जून–2021
वर्ष–85 । अंक–6 । ₹–19 प्रति । ₹–220 वार्षिक

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

गायत्रीतीर्थ शान्तिकुञ्ज
स्वर्ण जयंती वर्ष
1971-2021

7 समय का सार्थक सुनियोजन
16 अंतर्जगत की यात्रा है अध्यात्म
25 ईश्वर की शरणागति से मिलता है शाश्वत सुख
48 परम आनंद का द्वार है ध्यान

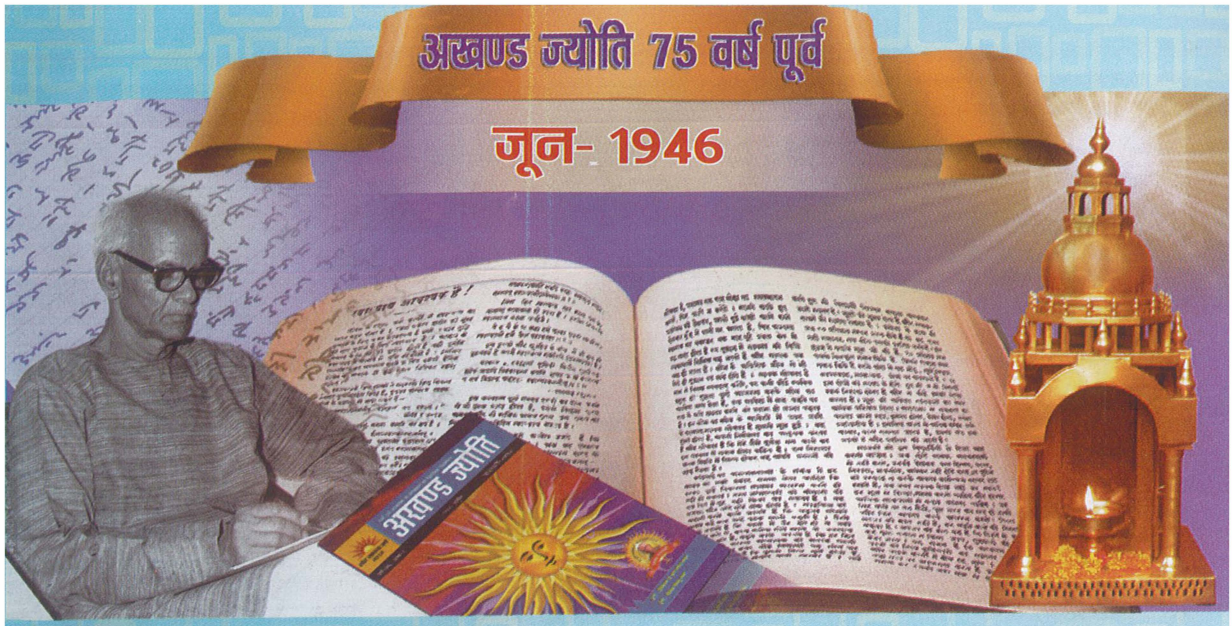

वास्तविक शिक्षा क्या है?

मैंने भूगोल सीखा, बीजगणित का स्वाद लिया, भूमिति का ज्ञान प्राप्त किया, भूगर्भ विद्या भी घटी, किंतु इन सबका परिणाम? मैंने इनसे क्या तो अपना भला किया और क्या अपने आपस वालों का? मैंने यह सारा ज्ञान क्यों लिया? मुझे इससे क्या फायदा हुआ? एक अँगरेज विद्वान (हक्सले) ने शिक्षा के संबंध में कहा है –

'वास्तविक शिक्षा उस मनुष्य ने पाई है, जिसका शरीर उसके काबू में रहता है और वह शरीर सौंपे हुए काम को आराम और आसानी से पूरा करता है। सच्ची शिक्षा उसे मिली कहनी चाहिए कि जिसकी बुद्धि शुद्ध है, शांत है और न्याय परायण है। उस मनुष्य ने सच्ची शिक्षा ली है, जिसका मन प्राकृतिक नियमों से पूर्ण है और इंद्रियाँ उसके वश में हैं। जिसकी अंतःवृत्ति विशुद्ध है, जो बुरे आचरण को धिक्कारता है और सबको अपने समान मानता है। ऐसा मनुष्य सही रूप से शिक्षित माना जाएगा।'

जो सच्ची शिक्षा की यह परिभाषा हो तो मुझे कसम खाकर कहना चाहिए कि ऊपर मैंने जिन शास्त्रों का उल्लेख किया है, वे अपने शरीर या अपनी इंद्रियों को वश में करके मेरे किसी काम नहीं आए।

— महात्मा गांधी

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940,2402574
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर
एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	: 85
अंक	: 06
जून	: 2021
ज्येष्ठ-आषाढ़	: 2078
प्रकाशन तिथि	: 01.05.2021

वार्षिक चंदा

भारत में	: 220/-
विदेश में	: 1600/-

आजीवन (बीसवर्षीय)

भारत में	: 5000/-

मृत्यु

भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं—**जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च**। अर्थात जिसने जन्म लिया है, उसका मरना भी सुनिश्चित है और मरे हुए का जन्म भी सुनिश्चित है। इस पूरी सृष्टि में जन्म-मरण का यह क्रम ही घूम-घूमकर चल रहा है। हर ज़न्म लेने वाले को एक दिन शरीर छोड़ने के लिए विवश होना पड़ता है। चाहे कोई जीवन जीने की कितनी भी प्रबल इच्छा रखे, परंतु अपनी मृत्यु से बच पाना संभव नहीं है। एक-न-एक दिन हमें काल के विकराल मुख में चले ही जाना होता है। यह एक ऐसा ध्रुवसत्य है, जिसे न तो झुठला पाना संभव है और न ही उसका सामना करने से बचा जा सकता है।

जो लोग मृत्यु से घबराते हैं, वे जीवन को उद्देश्यपूर्ण भाव से जीने के स्थान पर और लापरवाही से जीने का प्रयत्न करते हैं। वे सोचते हैं कि जीवन के ये ही अल्प क्षण हैं—इनमें जितना ज्यादा आनंद जीवन का उठाया जा सके, उतना मुझे उठा लेना चाहिए। इसके लिए वे उचित-अनुचित की परवाह नहीं करते, बल्कि कई-कई बार तो उपभोग की आतुरता उनसे ऐसे कार्य करा बैठती है, जिनकी गणना निकृष्टता में ही की जा सकती है।

इसके विपरीत जो मृत्यु को भी एक उत्सव की तरह मानते हैं, वे जीवन को एक लक्ष्य, दिशा के साथ जीते हैं। वे कर्मफल विधान पर विश्वास रखते हैं और शुभ कर्मों को करने में ही विश्वास रखते हैं। कुकर्मी को दुर्गति का सामना करना पड़ता है; जबकि मृत्यु को उत्सव मानकर चलने वाले, जीवनरूपी अवसर का सम्यक उपयोग करते हैं व सौभाग्य के अधिकारी बनते हैं। ❑

'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

विषय सूची

- आवरण—1 1
- आवरण—2 2
- मृत्यु 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  आयुर्वेद परंपरा का पुनर्जीवन 5
- समय का सार्थक सुनियोजन 7
- मूल्यवान है जीवन 09
- **पर्व विशेष**
  एक दैवी संकल्प की परिणति 11
- महापुरुषों के जीवन के प्रेरणादायी प्रसंग 13
- अंतर्जगत की यात्रा है अध्यात्म 16
- सांस्कृतिक विरासत की नगरी अयोध्या 18
- जल-संरक्षण करता शांतिकुंज 21
- आधुनिक भारत के नवनिर्माण में सरदार वल्लभभाई पटेल का योगदान 22
- ईश्वर की शरणागति से मिलता है शाश्वत सुख 25
- गाँवों का समावेशी विकास हो सुनिश्चित 29
- भक्त शिरोमणि शबरी 31
- अनिद्रा की समस्या व इसके सरल समाधान सूत्र 34
- कर्मयोग 36
- **चेतना की शिखर यात्रा—225**
  गायत्री योग का प्रवर्तन 40
- तप-साधना के चमत्कारी परिणाम 42
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—146**
  कैंसर पर सम्मोहन चिकित्सा का प्रभाव 44
- गीजा के पिरामिडों का रहस्यमयी संसार 46
- परम आनंद का द्वार है ध्यान 48
- **युगगीता—253**
  मृत्युपर्यंत कामनाओं के पीछे भटकते लोग 51
- दैनिक जीवन में प्रत्याहार की साधना 53
- जल ही जीवन है 55
- **परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—1**
  कामधेनु है गायत्री (पूर्वार्द्ध) 57
- **विश्वविद्यालय परिसर से—192**
  भगवान मृत्युंजय के अनुग्रह का अधिकारी बना विश्वविद्यालय 62
- **अपनों से अपनी बात**
  श्रद्धा के जागरण का पर्व 64
- आप की योजनाओं में गल जाएँगे (कविता) 66
- आवरण—3 67
- आवरण—4 68

आवरण पृष्ठ परिचय

सूर्य मध्यस्था गायत्री

जून-जुलाई, 2021 के पर्व-त्योहार

रविवार	06 जून	अपरा एकादशी	सोमवार	05 जुलाई	योगिनी एकादशी
गुरुवार	10 जून	वट सावित्री व्रत	शुक्रवार	09 जुलाई	ज्येष्ठ अमावस्या
रविवार	13 जून	महाराणा प्रताप जयंती	सोमवार	12 जुलाई	रथयात्रा
बुधवार	16 जून	सूर्य षष्ठी	शुक्रवार	16 जुलाई	कर्क संक्रांति/सूर्य षष्ठी
रविवार	20 जून	गायत्री जयंती/गंगा दशहरा/ पू० गु० महाप्रयाण दिवस	मंगलवार	20 जुलाई	देवशयनी एकादशी
सोमवार	21 जून	निर्जला एकादशी	शनिवार	24 जुलाई	गुरु पूर्णिमा/व्यास पूर्णिमा
गुरुवार	24 जून	कबीर जयंती	मंगलवार	27 जुलाई	गजानन संकट चतुर्थी

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

▶'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

आयुर्वेद परंपरा का पुनर्जीवन

आयुष और वेद—इन दो शब्दों को मिला देने से आयुर्वेद शब्द बना है। आयुष का संबंध जीवन से तथा वेद का संबंध ज्ञान एवं विज्ञान से होने के कारण आयुर्वेद, जीवन संबंधी विज्ञान का नाम हो जाता है। इसीलिए शास्त्रों में कहा गया है—

हिताहितं सुखं दुःखं आयुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तं आयुर्वेदः स उच्यते॥

अर्थात जिसके माध्यम से आयु के हित-अहित का ज्ञान हो और उसका परिमाण प्राप्त हो, उस ज्ञान को आयुर्वेद कहते हैं।

संपूर्ण विश्व में आयुर्वेद को मानवीय सभ्यता की प्राचीनतम लिखित चिकित्सा पद्धति के रूप में मान्यता मिली हुई है। आधुनिक विद्वानों के अनुसार कम-से-कम 3000 वर्ष पूर्व आयुर्वेद का जन्म हुआ और आज से लगभग 2800 वर्ष पूर्व इस विधा पर पुस्तकों, ग्रंथों, शास्त्रों की रचना भी प्रारंभ हो गई थी।

मान्यता है कि मानवता की रक्षा के लिए एवं रोगों के विनाश के लिए सृष्टिरचयिता प्रजापिता ब्रह्मा जी ने आयुर्वेद पर 1 लाख श्लोकों वाले ग्रंथ—ब्रह्म संहिता की रचना की तथा इस विज्ञान को दक्ष प्रजापति को प्रदान किया। बाद में दक्ष प्रजापति ने यह ज्ञान अश्विनी कुमारों को प्रदान किया और अश्विनी कुमारों ने देवराज इंद्र को यह रहस्य समझाया। देवराज इंद्र से महर्षि भरद्वाज ने इस ज्ञान को ग्रहण कर ऋषि पुनर्वसु एवं आत्रेय को दिया। आत्रेय ऋषि द्वारा रचित आत्रेय संहिता को इसी कारण से आयुर्वेद के मूल ग्रंथ के रूप में मान्यता प्राप्त है।

कालांतर में महर्षि चरक ने इसी आत्रेय संहिता को विस्तृत रूप प्रदान करते हुए चरक संहिता के नाम से लिखा। महर्षि चरक के अतिरिक्त महर्षि सुश्रुत आयुर्वेद के एक अन्य महत्त्वपूर्ण स्तंभ के रूप में विश्वविख्यात हैं। उनके द्वारा प्रदत्त पथ में आयुर्वेदिक शल्य क्रिया का मूल भाव है। इसके बाद महर्षि वाग्भट ने चरक प्रदत्त कायचिकित्सा और सुश्रुत प्रदत्त शल्य क्रिया को जोड़ते हुए अष्टांग हृदय नामक ग्रंथ की रचना की। इसके अतिरिक्त आचार्य शारंगधर द्वारा लिखित शारंगधर संहिता एवं माधवाचार्य द्वारा लिखित माधव निदान भी आयुर्वेद के आधारभूत ग्रंथों में से एक हैं। इसीलिए कहा गया है—

निदाने माधवः श्रेष्ठः सूत्रस्थाने तु वाग्भटः।
शारीरे सुश्रुतः प्रोक्तः चरकस्तु चिकित्सते॥

अर्थात रोग के निदानों का कारण जानने के लिए माधव निदान, सूत्रों के लिए वाग्भट द्वारा रचित अष्टांग हृदय, शारीरिक ज्ञान के लिए सुश्रुत संहिता एवं चिकित्सकीय कार्य के लिए चरक संहिता सर्वोत्तम ग्रंथ हैं।

आयुर्वेदीय मतानुसार मानव शरीर की उत्पत्ति पंचमहाभूतों से हुई है। मनुष्य के द्वारा भोजन ग्रहण करने के उपरांत शरीर की क्रियाएँ उस भोजन को विभक्त करना आरंभ कर देती हैं। आयुर्वेद कहता है कि भोजन का स्वाद उसके रस की प्रकृति पर निर्भर है। उदाहरण के तौर पर मीठा भोजन—रक्त, मांस, वसा, अस्थि, वीर्य तथा शक्ति को उत्पन्न करता है। इसी तरह से खट्टे पदार्थ—पाचनशक्ति बढ़ाते हैं तथा वात का शमन करते हैं। नमकीन पदार्थ भी वातनाशक होते हैं, परंतु कफ उत्पन्न करते हैं।

पाचन के दौरान भोजन से आहार रस पैदा होता है। आहार रस से रस धातु, रस धातु से रक्त, रक्त से मांस, वसा, अस्थियाँ, वीर्य, अस्थिमज्जा और ओज उत्पन्न होते हैं। आयुर्वेद के मतानुसार मनुष्य शरीर में रोगों की उत्पत्ति का कारण वात, पित्त व कफ का असंतुलन है—इसे ही त्रिदोष सिद्धांत कहकर पुकारा जाता है तथा आयुर्वेद के अनुसार रोगी की परीक्षा—नाड़ी परीक्षण, जिह्वा परीक्षण, त्वचा व अंग परीक्षण, छाती परीक्षण, मल-मूत्र परीक्षण तथा शारीरिक परीक्षण के माध्यम से की जाती है।

वात अथवा वायु अन्य दोषों व धातुओं को इनकी जगह पहुँचाने वाली, जल्दी चलने वाली, रजोगुण युक्त, सूक्ष्म और चंचल मानी गई है। इसमें भी कंठ में उदान वायु, हृदय में प्राण वायु, नाभि में समान वायु, मलाशय में अपान वायु और समस्त शरीर में व्यान वायु का निवास माना गया है।

इसी तरह से पित्त को भी पाचक, रंजक, साधक, आलोचक और भ्राजक नाम उसकी क्रियाओं के भेद के आधार पर दिए गए हैं। कफ को भी कर्मभेद के अनुसार क्लेदन, अवलंबन, रसन, स्नेहन और श्लेषण नाम से पुकारा गया है। इनके परस्पर संबंधों के अनुसार ही आयुर्वेद शास्त्र मानवीय प्रकृति को सात प्रकार का मानता आया है, यथा— वात प्रकृति, पित्त प्रकृति, कफ प्रकृति, वात-पित्त प्रकृति, वात-कफ प्रकृति, पित्त-कफ प्रकृति एवं वात-पित्त-कफ प्रकृति।

इसी तरह से आयुर्वेद शरीर में तेरह तरह के वेगों को गिनता है, जिनमें मल-मूत्र, अधोवायु, वमन इत्यादि आते हैं। इस प्रकार ध्यान से देखें तो आयुर्वेद का विज्ञान एक गंभीर सोच को लेकर के रचा गया। कालांतर में आयुर्वेद में आठ अंग भी विकसित हो गए, जिनमें काय तंत्र (औषधियों के द्वारा चिकित्सा), शालाक्य तंत्र (आँख, नाक, मुख इत्यादि से संबंधित रोगों की चिकित्सा), शल्य तंत्र (चीर-फाड़ के द्वारा चिकित्सा), अगद तंत्र (विष से संबंधित रोगों की चिकित्सा), भूत विद्या (ग्रहों से संबंधित एवं मानसिक व्याधियों की चिकित्सा), कौमार भृत्य (बच्चों को होने वाले रोगों की चिकित्सा), रसायन तंत्र (वृद्धावस्था के विकारों से मुक्ति दिलाने हेतु कायाकल्प चिकित्सा) तथा वाजीकरण (वीर्य से संबंधित व्याधियों की चिकित्सा)। इन्हीं अंगों को मिलाकर अष्टांग आयुर्वेद कहा जाता है।

यहाँ इन बातों का विवरण प्रदान करने के पीछे का मूल उद्देश्य एक ही है कि ऋषितंत्र द्वारा प्रदत्त इस महत्त्वपूर्ण भारतीय विद्या का पुनर्जीवन परमपूज्य गुरुदेव द्वारा शांतिकुंज के पुनीत प्रांगण में किया गया। उन दिनों जब अनेक लोग, आधुनिक चिकित्सा के प्रति आकर्षित होकर भारत की इस मूल विद्या को भूलते नजर आते थे, परमपूज्य गुरुदेव द्वारा सन् 1970 के दशक में ही शांतिकुंज में एक संपूर्ण व समग्र आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के तंत्र की स्थापना की गई।

आज वह तंत्र एक बृहत्तर स्वरूप ले चुका है एवं शांतिकुंज की आयुर्वेदिक फार्मेसी द्वारा सैकड़ों औषधियों का निर्माण किया जाता है व उन्हें नगण्य से शुल्क पर प्रदान किया जाता है। वर्तमान परिस्थितियों में यह चरक परंपरा के पुनरोत्थान का प्रकल्प कहा जा सकता है। ❑

'सीमांत गांधी' के नाम से मशहूर अब्दुल गफ्फार खाँ उन दिनों डेरा इस्माइल खाँ जेल में बंद थे। उन्हें अँगरेज सरकार ने सश्रम कारावास की सजा सुनाई थी और हर दिन उन्हें बीस सेर गेहूँ पीसना पड़ता था। न पीस पाने की स्थिति में निष्ठुर सिपाहियों द्वारा दी गई यातना का सामना भी करना पड़ता था।

उनकी यह स्थिति एक दयालु अधिकारी से न देखी गई। वह अनाज पीसने की व्यवस्था का अधिकारी था, सो उसने एक दिन 10 सेर गेहूँ में 10 सेर पिसा हुआ आटा मिला दिया। फिर चुपके से गफ्फार खाँ साहब के कान में बोला कि जब बड़े अधिकारी इधर से निकलें तो आप चक्की चलाने लगें, इसमें आधा आटा पिसा हुआ है, सो आपको कोई तकलीफ नहीं होगी। अब्दुल गफ्फार खाँ ने उस सहृदय अधिकारी के प्रेमपूर्ण प्रयास को धन्यवाद देते हुए पिसा आटा यह कहकर वापस कर दिया कि अधिकारियों की आँखों में धूल झोंककर शरीर का कष्ट तो मिट जाएगा, पर कपट करके आत्मा पर जो मैल चढ़ेगा, उसका भुगतान कौन करेगा ?

समय का सार्थक सुनियोजन

समय मनुष्य को ईश्वरप्रदत एक ऐसी संपदा है, जिसका सदुपयोग करने पर मनचाही संपदा का अर्जन किया जा सकता है। जितने भी सफल व्यक्ति हुए, महापुरुष-महामानव कहलाए, उनके जीवन में इस विशेषता को एक समान पाया गया है कि उन्होंने समय के एक-एक पल का सार्थक नियोजन किया, अपनी पात्रता का अभिवर्द्धन किया और लक्ष्य की ओर सतत बढ़ते रहे।

समय का सही नियोजन हो इसके लिए आवश्यक हो जाता है कि योजनाबद्ध तरीके से काम किया जाए। यदि विद्यार्थी हैं, तो समय सारिणी बनाकर पढ़ाई करें। हर विषय के लिए निश्चित समय तय करें और फिर इस पर दृढ़ता से डटे रहें। पढ़ाई के साथ सोने-जागने, खेल-कूद, मनोरंजन तथा अन्य गतिविधियों के लिए भी समय निर्धारित करें तथा इनका पालन करें। समय सारिणी बनाकर कार्य करने पर समय के उपयोग व बरबादी का हिसाब-किताब रखना सरल हो जाता है और नित्यप्रति इसमें सुधार एवं निखार सुनिश्चित हो पाता है।

समय के सदुपयोग के लिए कार्यों को प्राथमिकता के आधार पर तय करना होता है। इससे अनावश्यक या गैर-महत्त्वपूर्ण कार्यों में समय की बरबादी नहीं होती। कार्यों की प्राथमिकता के लिए अपना लक्ष्य स्पष्ट होना आवश्यक है। यह नियमित रूप से आत्मनिरीक्षण के आधार पर संभव होता है। साथ में अनुभवी गुरुजनों का सत्संग-सान्निध्य इसको स्पष्ट करने में सहायक रहता है। बिना लक्ष्य की स्पष्टता के व्यक्ति व्यर्थ के कार्यों में उलझा रहता है और जीवन दीवार घड़ी के पेंडुलम की भाँति इधर-उधर हिलता भर रहता है, लेकिन पहुँचता कहीं नहीं।

कार्य की नियमितता और निरंतरता ऐसे सद्गुण हैं, जिनके आधार पर समय का श्रेष्ठतम उपयोग संभव होता है, जो अपनी परिणति में चमत्कारिक ढंग से फलीभूत होते हैं। यदि नियमित रूप से 1 घंटे में 40 पृष्ठ का अध्ययन होता है, तो माह में 1200 पृष्ठ और साल में लगभग 15000 पृष्ठ पूरे हो जाते हैं।

यह क्रम अनवरत चलता रहे तो 10 वर्ष में 1,50,000 पृष्ठ पढ़े जा सकते हैं और यदि ये किसी एक ही विषय से संबंधित हैं तो व्यक्ति उसका विशेषज्ञ बन सकता है। 1 घंटा प्रतिदिन व्यायाम करने पर व्यक्ति 15 वर्ष आयु बढ़ा सकता है। मिल्टन ने अतिव्यस्त मंत्री पद पर रहते हुए भी कुछ मिनट समय निकालकर 'पैराडाइज लोस्ट' जैसे महाकाव्य की रचना की थी।

हैनरी किरक व्हाट को समय का बहुत अभाव रहता था, ऐसे में घर से दफ्तर तक आते-जाते समय उन्होंने ग्रीक भाषा सीखी थी। फौजी डॉक्टर बनने पर घोड़े पर सवारी के समय में ही उन्होंने फ्रेंच और इटेलियन भाषाएँ सीखीं थीं।

एडवर्ड बटलर लिटन ने नियमित तीन घंटे का समय अध्ययन और लेखन के लिए निर्धारित कर रखा था। इतने में हजारों पुस्तकों का अध्ययन और साठ ग्रंथों की रचना उन्होंने कर डाली थी।

अमेरिकी गृहिणी हैरियट स्टो ने टॉम काका की कुटिया जैसे गुलामी प्रथा के खिलाफ आग उगलने वाली रचना, बच्चों का लालन-पालन करते हुए घर-गृहस्थी के झंझट के बीच नियमित कुछ समय निकालकर लिखी थी। चाय बनने में पानी उबलने के समय में लाँगफैलो ने इनफरल ग्रंथ का अनुवाद कर डाला था।

अनवरत श्रम के साथ विश्राम भी आवश्यक हो जाता है, जिसका रचनात्मक नियोजन करते हुए समय का सदुपयोग किया जा सकता है। एक कार्य में थकने पर दूसरा रुचिकर कार्य हाथ में लिया जा सकता है, जिससे मन की थकान भी उतर जाती है और एक नया कार्य करना भी संभव होता है।

इसके लिए निश्चित रूप से लक्ष्य पर केंद्रित रहना आवश्यक हो जाता है और यदि कार्य कठिन या बहुत बड़ा हो तो उसे छोटे-छोटे हिस्सों में तोड़कर सरल बनाया जा सकता है, फिर इसके संपन्न होने पर नए विश्वास एवं उत्साह के साथ कठिन कार्य को हाथ में लिया जा सकता है।

इस तरह समय का सतत सदुपयोग संभव होता है, लेकिन इसे सार्थक दृष्टि से करने के लिए राह के व्यवधानों

की पहचान भी आवश्यक हो जाती है, जिससे इनको पहचानते हुए इनसे बचा जा सकता है। आज के मोबाइल युग में स्मार्ट फोन निस्संदेह रूप से इस सूची में सबसे ऊपर आता है।

यह आज जीवन की एक आवश्यकता बन गया है, लेकिन साथ ही यह समय की बरबादी का भी एक प्रमुख कारण है। हर समय इससे चिपके रहने के बजाय बेहतर है कि इसके लिए समय निर्धारित करें। उस दौरान महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक संवादों को निपटाकर फिर अपने कार्य में लग जाएँ। अनावश्यक गप्पबाजी भी समय बरबादी का एक बड़ा कारण बनती है, जिसमें पता ही नहीं चलता कि कितना समय नष्ट हो गया।

अत: इसके लिए भी समय निश्चित करें, जिसमें आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण समाचार, विचार एवं शिष्टाचार के विनिमय के बाद फिर अपने कार्य में लग जाएँ। साथ ही दिनचर्या पर भी ध्यान दें। इसके बिगड़ने पर जीवन असंतुलित हो जाता है और आवश्यक कार्यों के छूटने पर तनाव की स्थिति आ जाती है। अत: सोने व जागने का समय निश्चित करें और अपनी दिनचर्या को सुव्यवस्थित करें, जिससे दिन के हर पल का प्रभावी उपयोग संभव हो सके।

इसी के साथ आलस्य-प्रमाद एवं दीर्घसूत्रता को प्रश्रय न दें। मन में कार्य के प्रति उत्साह बनाए रखें। चुस्त-दुरुस्त रहें। सतत लक्ष्य की ओर कदम बढ़ाते रहें। आज का काम कल पर न टालें। संत कबीर की बात को गाँठ बाँधकर रखें कि—

काल्ह करै सो आज करु,
आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी,
बहुरि करैगा कब्ब॥

इसके साथ परफेक्शनिज्म से बचें। इसके चलते व्यक्ति स्वयं से अत्यधिक आशा-अपेक्षा लगाए रहता है और उनके पूरा न होने पर हताशा-निराशा एवं ग्लानि का शिकार हो जाता है। स्मरण रखें कि कार्य का श्रेष्ठतम प्रदर्शन महत्त्वपूर्ण है, लेकिन समय सीमा का भी ध्यान रखना जरूरी है। समय चूक जाने पर किया गया बहुत अच्छा कार्य भी फिर अभीष्ट प्रयोजन सिद्ध नहीं कर पाता।

इस तरह समय के हर पल को बेशकीमती मानते हुए इसका सदुपयोग करें; क्योंकि बीता हुआ समय फिर वापस आने वाला नहीं। परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में—जीवन का अर्थ है समय, जो जीवन से प्यार करते हैं, वे आलस्य में समय न गँवाएँ। अत: जीवन के हर पल का श्रेष्ठतम उपयोग करते हुए इस जीवन को सफल एवं सार्थक बनाएँ। ❑

दिन भर भीख माँगने के बाद भिखारी एक पेड़ के नीचे बैठकर आराम करने लगा। उसी राह से एक मजदूर आया और वह भी पेड़ के नीचे आकर बैठ गया। भिखारी ने एक दृष्टि मजदूर पर डाली और उससे बोला—"तुमने आज दिन भर जितनी कमाई की, उतनी तो मैं आधे दिन में कर लेता हूँ। भला तुम्हारे में और मुझमें क्या अंतर रहा?" मजदूर बोला—"मित्र! अंतर परिश्रम और जाहिली का है। मैं अपने पुरुषार्थ से कमाता हूँ और उस कमाई को गर्व से अनुभव करता हूँ; जबकि तुम याचना के पात्र बनते हो और उस धन को अपना मान लेते हो।" भिखारी का आत्मसम्मान जागा और वह भी मेहनत करने निकल पड़ा।

मूल्यवान है जीवन

एक बार भ्रमण करते हुए महात्मा गौतम बुद्ध एक गाँव में पहुँचे। गाँव के लोगों ने उनका खूब आदर व सत्कार किया। ग्रामीणों ने महात्मा बुद्ध से अपने गाँव में ठहरने का आग्रह किया। महात्मा बुद्ध ग्रामीणों के आग्रह पर उस गाँव में ठहर गए। सुबह-शाम उनके प्रवचन होने लगे। बुद्ध के सत्संग में आस-पास के कई गाँवों के लोग प्रवचन सुनने आने लगे।

उस गाँव में बुद्ध के सत्संग का आज आखिरी दिवस था। सत्संग में शामिल कई लोगों के मन में कई जिज्ञासाएँ थीं। वे सभी बुद्ध के समक्ष अपनी जिज्ञासाएँ रख रहे थे और बुद्ध प्रसन्नतापूर्वक ग्रामीणों की जिज्ञासाओं का निराकरण कर रहे थे। बुद्ध की कही गई बातें लोगों के दिल को छू रही थीं। बुद्ध की वाणी मानो लोगों के हृदय में उतर रही थी। लोग बुद्ध द्वारा बताई गई बातों को अपने जीवन में उतारने व अपनाने को प्रसन्नतापूर्वक राजी हो रहे थे। वे लोगों की समस्याओं का निराकरण कर रहे थे और लोग संतुष्ट हो रहे थे।

बुद्ध और लोगों के बीच हो रही वार्त्ता को पीछे खड़ा एक व्यक्ति बड़े ध्यान से सुन रहा था। उसके मन में भी कुछ प्रश्न थे। जैसे कि मृत्यु क्या है? मृत्यु के बाद मनुष्य का क्या होता है? स्वर्ग-नरक की अवधारणा कहाँ तक सच है आदि; पर जब उसने देखा कि बुद्ध तो लोगों की सांसारिक समस्याएँ सुलझाने में ही व्यस्त हैं, तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

वह मन-ही-मन सोच रहा था कि भला बुद्ध को लोगों के पारिवारिक झंझटों व दुनियादारी के मामलों में पड़ने से क्या लाभ? बुद्ध को तो भगवद्भजन करना चाहिए। उन्हें बुनियादी समस्याओं से ग्रस्त इन लोगों के लिए अपना समय क्यों खराब करना चाहिए। वह सोच रहा था कि यहाँ जमा हुए लोगों की व्यक्तिगत समस्याओं को भला बुद्ध इतना महत्त्व क्यों दे रहे हैं?

उसे लगा कि बुद्ध का व्यवहार देखकर तो मुझे ऐसा जान पड़ता है मानो इन लोगों का दुःख बुद्ध का अपना दुःख हो। बुद्ध से मिलने की उसकी बारी भी आ गई। बुद्ध से मिलते ही उसने पूछा—"महाराज! आपको इन दुनियादारी व सांसारिक बातों से क्या लेना-देना?"

बुद्ध बोले—"मैं भी तो आखिर एक इनसान ही हूँ। मुझे भी इन लोगों के दुःख, दुःखी करते हैं। मैं उन सबकी आँखों में दुःख के नहीं, बल्कि खुशी के आँसू देखना चाहता हूँ। उनके दुःख के कारण को दूर करना चाहता हूँ। इसलिए मैं उन सबकी बातों को बड़े ध्यान से सुनता हूँ और उनके दुःख दूर करने का प्रयास करता हूँ, फिर उनकी आँखों में खुशी के आँसू देखकर मुझे भी खुशी होती है।"

वे आगे बोले—"वैसे भी वह ज्ञान किस काम का जो इतना घमंडी और आत्मकेंद्रित हो कि अपने अतिरिक्त किसी दूसरे की चिंता ही न कर सके? ऐसा ज्ञान तो अज्ञान से भी बुरा है। ऐसा ज्ञान तो भारस्वरूप ही है, जो किसी का भला भी नहीं कर सके। ज्ञान तो तभी सार्थक है, जब वह लोक-कल्याण में, लोकहित में संलग्न हो, सुनियोजित हो। जो ज्ञान लोगों की बुनियादी समस्याओं का निराकरण न कर सके, वह ज्ञान कैसा? स्वयं के साथ-साथ दूसरों के लिए आनंद व कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने में भी ज्ञान की सार्थकता है।"

बुद्ध आगे बोले—"वत्स! मुझे पता है कि तुम्हारे मन में मृत्युविषयक प्रश्न उठ रहे हैं। मृत्यु के उपरांत क्या होता है, यह तुम जानना चाहते हो, पर तुम पहले मेरी एक बात का जवाब दो। अगर कोई व्यक्ति कहीं जा रहा हो और अचानक कहीं से आकर उसके शरीर में एक विषैला बाण घुस जाए तो उसे क्या करना चाहिए? पहले शरीर में घुसे बाण को हटाना ठीक रहेगा या फिर यह देखना कि वह बाण किधर से आया है और किसे लक्ष्य कर के मारा गया है।"

उस व्यक्ति ने कहा—"भगवन्! पहले तो शरीर में घुसे विषैले बाण को तुरंत निकालना ही ठीक रहेगा, अन्यथा विष पूरे शरीर में फैल जाएगा।" बुद्ध ने कहा—"तुमने बिलकुल ठीक कहा वत्स! तुम अब यह बताओ कि पहले इस जीवन के दुःखों के निवारण का उपाय किया जाए या मृत्यु के बाद की बातों के बारे में सोचा जाए?" वह व्यक्ति

बुद्ध के कहने का तात्पर्य समझ चुका था। वह तथागत के चरणों में गिर पड़ा। उसने उनसे क्षमा-याचना की और उनके उपदेशों को अपने जीवन में उतारने की प्रतिज्ञा भी की। वास्तव में जीवन मृत्यु से अधिक मूल्यवान है, महत्त्वपूर्ण है। जीवन को जी भर कर जीने के लिए, जीवन को आनंद से भर लेने के लिए जीवन से जुड़ी समस्याओं का समाधान भी उतना ही आवश्यक है।

जीवन को निर्विघ्न व निष्कंटक बनाकर ही हम जीवन को खुशियों से भर सकते हैं, आनंद से भर सकते हैं। बुद्धपुरुषों के द्वारा प्रदत्त ज्ञान ही जीवन को निष्कंटक व निर्विघ्न बनाने का सशक्त साधन है। हमें इसी ज्ञान की उपासना करनी चाहिए। ❑

अरब देश में एक प्रसिद्ध सुल्तान रहा करते थे। वे बड़े न्यायप्रिय एवं प्रजावत्सल थे। एक बार बादशाह सुल्तान जंगल की सैर को निकले। उन्हें शिकार अत्यंत प्रिय था। साँझ के समय वे सूर्यास्त का दृश्य देख रहे थे तभी उन्हें लगा कि टीले पर कोई जानवर बैठा है तो उन्होंने तुरंत निशाना साध कर उस पर तीर छोड़ा।

तीर लगते ही एक जोर की चीख सुनाई पड़ी। चीख सुन सुल्तान काँप उठे; क्योंकि यह एक मनुष्य की चीख थी। उन्होंने पास जाकर देखा कि एक बालक तीर से घायल होकर पीड़ा से छटपटा रहा है। कुछ ही समय में उसका मजदूर पिता भी वहाँ आ गया। अपने पुत्र की यह हालत देख, वह बेहाल हो गया।

सुल्तान ने बालक का शीघ्र उपचार कराया और उसके बाद दो थाल बालक के पिता के लिए मँगवाए। एक में अशर्फियाँ और दूसरे में तलवार रखी थी। सुल्तान मजदूर से बोले—"मैंने जानवर समझकर तीर छोड़ा था, परंतु वह गलती से तुम्हारे पुत्र को लगा, किंतु तब भी तीर चलाने के कारण दोष तो मेरा ही है। तुम चाहो तो अशर्फियाँ लेकर इस भूल को माफ कर दो अन्यथा यदि मुझे माफी का हकदार न पाओ तो मेरा सिर तलवार से कलम कर दो।"

सुल्तान की न्यायप्रियता देखकर मजदूर दंग रह गया। उसने कहा—"हजूर! मुझे दोनों में से कुछ नहीं चाहिए। केवल आप यह भूल दोबारा न करें। आप निरीह प्राणियों का वध करना छोड़ दें।" बादशाह ने उस दिन के बाद से शिकार करना छोड़ दिया।

पर्व विशेष

एक दैवी संकल्प की परिणति

परमपूज्य गुरुदेव की हिमालय यात्राएँ सदा ही गायत्री परिजनों के अंतस् को रोमांचित कर देने वाली हुआ करती थीं। जबसे उनका जीवन सार्वजनिक हुआ था और लोगों को यह अनुभव होने लगा था कि परमपूज्य गुरुदेव एक अवतारी सत्ता हैं तब से अनेकों के मन में यह कुतूहल जन्म लिया करता था कि परमपूज्य गुरुदेव की हिमालय यात्राओं के मध्य क्या चमत्कारिक घटनाक्रम घटते हैं। परमपूज्य गुरुदेव की तीसरी हिमालय यात्रा भी कुछ ऐसे ही विलक्षण रहस्यों को अपने भीतर समेटे हुए थी।

उस यात्रा में अपनी मार्गदर्शक सत्ता से मिलने पर उनकी मार्गदर्शक सत्ता ने उन्हें ऋषि परंपरा के पुनर्जीवन का महती दायित्व सौंपा। उनसे मिलने के उपरांत परमपूज्य गुरुदेव हरिद्वार लौटते समय दुर्गम हिमालय की कंदराओं में ऐसी दैवी शक्तियों के साथ रुकते-ठहरते हुए आए, जिनके भौतिक शरीर भी अब समाप्त हो चुके थे। ऐसी शक्तियाँ मात्र अपने छायाशरीर एवं सूक्ष्मशरीरों के माध्यम से ही समष्टिगत ऊर्जा को जन्म देने के लिए विशेष तपोनुष्ठानों में संलग्न थीं।

उस यात्रा में परमपूज्य गुरुदेव हरिद्वार लौटते समय उसी स्थान पर रुके, जिस स्थान की ओर उनकी मार्गदर्शक सत्ता ने यह कहकर इशारा किया था कि वह सप्त ऋषियों की तपस्थली है। जमीन पूर्णरूपेण दलदली थी, क्योंकि वर्षों पहले माँ गंगा वहाँ से होकर गुजरा करती थीं। दैवी संकल्प था तो जमीन खरीदने का काम देखते-देखते पूरा हो गया। साथ में कार्यकर्त्ताओं की जो छोटी-सी टीम चल रही थी, उनमें से एक के मन में जिज्ञासा उठी कि जिस स्थान पर परमपूज्य गुरुदेव शांतिकुंज नामक आश्रम बनाना चाहते हैं, उस आश्रम की स्थापना का प्रयोजन क्या है? यहाँ पर ऐसा क्या किया जाएगा, जो अभिनव होगा? अपने मन के भावों को प्रश्नों के रूप में उन्होंने परमपूज्य गुरुदेव के सम्मुख रखा।

परमपूज्य गुरुदेव ने उनकी जिज्ञासा के पीछे के मनोभाव सहजता से समझ लिए और निकट के एक पेड़ के नीचे सभी को लेकर बैठ गए। इसके उपरांत परमपूज्य गुरुदेव ने उनकी जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहा—"बेटा! यहाँ जो आश्रम बनेगा वह आश्रम ऋषियों का, देवात्मा हिमालय का प्रतिनिधित्व करेगा; इसलिए यहाँ ऋषियों की मूर्तियों की स्थापना का प्रबंध भी किया जाएगा। यह गायत्री तीर्थ होगा; इसलिए यहाँ माँ गायत्री की स्थापना तो होगी ही, साथ ही अखंड दीपक के सम्मुख अहर्निश अनुष्ठानों का क्रम भी यहाँ पर चलेगा। सबसे पहले इस भूमि के प्रसुप्त संस्कारों को जगाने के लिए 24-24 लाख के 24 अखंड पुरश्चरण हम यहाँ पर संपन्न कराएँगे।

थोड़ा ठहरकर परमपूज्य गुरुदेव आगे बोले—"तुम लोग देखते जाना। इस स्थान के संस्कारों के जागते ही यहाँ से एक-एक करके अनेक तेजस्वी कार्यकर्त्ता निकलकर आगे आएँगे। यहाँ पर हम उनकी प्राण चेतना के जागरण के लिए प्राण प्रत्यावर्तन सत्र, युगशिल्पी सत्र, वानप्रस्थ सत्र चलाएँगे और फिर देखते-देखते यह कुछ ऐसा आकार ले लेगा, जैसा भगवान बुद्ध के द्वारा बनाए गए विहारों ने ले लिया था। वहाँ से प्रशिक्षण प्राप्त करके कार्यकर्त्ता देश-विदेश जाया करते थे। ऐसा ही धर्मचक्र प्रवर्तन का कार्य शांतिकुंज की परिधि से भी संपन्न हो सकेगा।"

प्रश्न पूछने वाले कार्यकर्त्ता को परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों को सुनकर कुछ ऐसा लगा कि मानो वे किसी और ही दुनिया में, विश्व में पहुँच गए हों। परमपूज्य गुरुदेव आगे कह रहे थे—"इस आश्रम में बेटा हम ऋषि जमदग्नि की परंपरा को पुनर्स्थापित करेंगे, ताकि यहाँ गुरुकुल और आरण्यक तैयार हो सकें। इस आश्रम में महर्षि चरक की आयुर्वेद परंपरा को फिर से जीवन मिलेगा। सारे ऋषियों की महत्त्वपूर्ण परंपराओं को पुनर्जीवन देने का भाव हमारे मन में है।"

उन कार्यकर्त्ता ने पूछा—"गुरुदेव! इन सबमें सबसे महत्त्वपूर्ण निर्माण कौन-सा होगा?" परमपूज्य गुरुदेव बोले—"जहाँ हम बैठे हैं, इससे थोड़ा-सा दूर हटकर हम एक प्रयोगशाला खोलेंगे बेटा और एक विश्वविद्यालय भी।

प्रयोगशाला का उद्देश्य होगा कि उसके माध्यम से विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का सामयिक संकल्प पूर्ण किया जा सके। यज्ञ के माध्यम से रोगों का निवारण तथा वातावरण का परिशोधन—ऐसे सारे विषयों पर शोध करने वाली यह विश्व की पहली एवं अनुपम प्रयोगशाला होगी।''

परमपूज्य गुरुदेव आगे बोले—''ऐसा ही एक विश्वविद्यालय भी यहाँ बनेगा बेटा, जहाँ हम शिक्षा के साथ विद्या के समन्वय का संकल्प पूरा करके दिखाएँगे। विद्यार्थियों को डिग्री प्रदान करने वाले तो अनेक विश्वविद्यालय हैं, पर उनको सर्वांगपूर्ण व्यक्तित्व प्रदान करने वाला एक अनूठा विश्वविद्यालय हम यहाँ निर्मित करके ही दिखाएँगे।'' परमपूज्य गुरुदेव के उन शब्दों ने उन कार्यकर्त्ता के हृदय को झकझोर कर रख दिया। उन्हें लगा कि उनकी आँखों के सम्मुख आने वाले 50 वर्षों के दृश्य गुजर गए हों।

आज वे कार्यकर्त्ता सशरीर हमारे मध्य न भी हों, परंतु तब भी उनके साथ हुई इस परिचर्चा ने आज के शांतिकुंज, ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय की झाँकी हमारे सामने उपस्थित कर दी, जिसकी भूमिका परमपूज्य गुरुदेव ने वर्षों पहले ही लिखकर रख दी थी। यह एक दैवी संकल्प की साक्षात् परिणति थी। ❑

गुलिक नामक एक व्याध पशु-पक्षियों का शिकार करता और लोगों को लूटता था। लोग उसके नाम से ही काँपा करते थे। उसके पास के गाँव में एक मंदिर था। उस मंदिर के वयोवृद्ध पुजारी सत्यजित अत्यंत सदाचारी, धार्मिक, त्यागी व उदार थे।

एक रात को जब वे भगवान का ध्यान कर रहे थे तो उन्होंने देखा कि गुलिक मंदिर में आ गया और उसने उनसे भगवान के आभूषणों को उतारकर देने के लिए कहा। सत्यजित के मना करने पर गुलिक ने उन्हें मारने के लिए कटार निकाल ली।

उसके ऐसा करने पर भयभीत होने की अपेक्षा सत्यजित की आँखों में गुलिक के लिए करुणा का भाव उमड़ आया और उनकी आँखें नम हो गईं, जिसे देख गुलिक ने उनसे उनके इस व्यवहार का कारण पूछा। सत्यजित बोले—''क्या तुम्हारे माता-पिता, भाई-बहन जीवित हैं ?''

गुलिक के न कहने पर सत्यजित बोले—''फिर यह पाप किसके लिए एकत्र कर रहे हो ? जीवन की इस थोड़ी-सी अवधि में श्रेष्ठ कर्मों की पूँजी जमा कर अपना इहलोक और परलोक, दोनों ही क्यों नहीं सँवार लेते ?'' उनके इन करुणासिक्त वचनों को सुनकर गुलिक फूट-फूटकर रो पड़ा। उसके इन आँसुओं में सच्चा पश्चात्ताप था और जीवन की दिशा को बदलने का दृढ़ निश्चय भी। उसने उसी दिन से अपने जीवन का पथ बदला और महात्मा सत्यजित के संरक्षण में श्रेष्ठ पथ का अनुगामी बना।

महापुरुषों के जीवन के प्रेरणादायी प्रसंग

महापुरुषों के जीवन के छोटे-छोटे प्रसंग भी बहुत प्रेरणाप्रद होते हैं। इन प्रसंगों में ही उनकी महानता झलकती है, उनकी सोच दिखती है और उनका व्यवहार लोगों के लिए एक प्रेरणा बन जाता है। महान लोगों की एक खास विशेषता होती है कि ऐसे लोग कभी दिखावा नहीं करते हैं। जो हैं, जैसे हैं, वैसे ही रहते हैं। इनमें महान होने का कोई अहंकार नहीं होता और न ही इस बात का अहंकार होता है कि उन्होंने अपने जीवन में कोई बड़ा काम किया है। ये सामान्य लोगों की भाँति सामान्य बनकर हमारे समाज में रहते हैं। यही कारण है कि इनके व्यवहार व वेशभूषा को देखकर कई बार लोग इन्हें पहचान भी नहीं पाते।

लाल बहादुर शास्त्री ऐसे ही महान लोगों में से एक थे। भारत के दूसरे प्रधानमंत्री का पद सँभालने वाले लाल बहादुर शास्त्री का जीवन सादगी और सज्जनता की प्रतिमूर्ति था। जब भी राजनीतिक क्षेत्र में कोई असभ्य व आचरणविहीन घटना घटती है तो इसके विपरीत की मिसाल देने के लिए सदैव शास्त्री जी का ही नाम स्मरण किया जाता है। वास्तव में शास्त्री जी का पूरा जीवन ही एक मिसाल था। वे एक ऐसे इनसान थे, जो प्रधानमंत्री बनने के बाद भी अपने जीवन के उन दिनों को नहीं भूले, जब वे मात्र 2.50 रुपये में अपने पूरे महीने का गुजारा किया करते थे।

सन् 1961 में जब गोविंद वल्लभ पंत जी के बाद लाल बहादुर शास्त्री जी को देश का गृहमंत्री बनाया गया तो उस समय उनका अपना कोई घर नहीं था यानी उनके पास इतने पैसों की जमा पूँजी भी नहीं थी कि जिससे वे अपना एक घर भी बना सकें। प्रधानमंत्री पद के दौरान एक बार शास्त्री जी दिल्ली से आगरा जाने के लिए ट्रेन से गए।

उस समय मंत्री, पुलिस अधिकारी और अन्य विशिष्ट अधिकारीगण प्रथम श्रेणी के डिब्बे की तरफ उनका स्वागत करने के लिए दौड़े, लेकिन उन सबको यह देखकर तब बहुत आश्चर्य हुआ जब प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री तृतीय श्रेणी के डिब्बे से नीचे उतरे। किसी को यह आशा ही नहीं थी कि प्रधानमंत्री पद पर होते हुए भी वे तृतीय श्रेणी में यात्रा करेंगे।

शास्त्री जी ने कभी भी प्रधानमंत्री या गृहमंत्री जैसे ऊँचे पद का उपयोग अपने व्यक्तिगत लाभ या सामाजिक यश, प्रतिष्ठा पाने के लिए नहीं किया। सदैव देश के हित के बारे में ही सोचा और इस पद पर रहते हुए सर्वहितकारी श्रेष्ठ कार्यों को ही अंजाम दिया। महान लोग वे नहीं होते, जो अपने जीवन में बहुत ऊँची सफलता पाते हैं और उस सफलता पर गर्वोन्मत्त होते हैं, बल्कि महान लोग वे होते हैं जो सादगी, उच्च विचार व त्याग का मार्ग अपनाते हैं। सांसारिक संबंधों में बँधकर भी वे अपने समाज व देश के प्रति कर्त्तव्यों को नहीं भूलते और उनका भली प्रकार निर्वहन करते हैं।

महान लोगों की इसी श्रेणी के क्रम में आती हैं बर्मा या म्यांमार की गांधी कही जाने वाली म्यांमार की राज्य परामर्शदाता और लोकतंत्र के लिए राष्ट्रीय लीग की नेता—'आंग सान सू की'। ये एक राजनेता, राजनयिक तथा लेखिका हैं। ये बर्मा के राष्ट्रपिता आंग सान की पुत्री हैं, जिनकी सन् 1947 में राजनीतिक हत्या कर दी गई थी। सू की ने बर्मा में लोकतंत्र की स्थापना के लिए लंबा संघर्ष किया और अंततः म्यांमार के सर्वोच्च पद को सुशोभित भी किया।

इस संघर्ष से पहले वे अपना शानदार जीवन ब्रिटेन में अपने पति व बच्चों के साथ गुजार रहीं थीं, लेकिन सन् 1988 में अपनी बीमार माँ की सेवा के लिए जब वे अपने देश बर्मा आईं तो उनसे यह देखा नहीं गया कि उनका देश फौजी कदमों तले कुचला जा रहा है; इसलिए उन्होंने अपने देश की आजादी और लोकतंत्र की बहाली के लिए ब्रिटेन वापस जाना रद्द कर दिया और बर्मा में ही रहकर लोकतंत्र के लिए आंदोलन की अगुआई करने का निश्चय किया। उन्हें इस बात का भली प्रकार पता था कि बर्मा में सैनिक सरकार उन पर दमन करने से नहीं हिचकिचाएगी और ऐसा ही हुआ।

फौजी सरकार ने सन् 1988 में हुए लोकतांत्रिक चुनाव में आंग सान सू की के नेतृत्व वाले नेशनल लीग फॉर डेमोक्रेसी की जीत को रद्द करते हुए उन्हें जेल में डाल

दिया। जब विश्व जनमत सू की के नेतृत्व में उठ खड़ा हुआ तो फौजी सरकार ने सू की को नजरबंद कर दिया। इसी बीच सन् 1999 में ब्रिटेन में रहने वाले उनके पति की तबीयत बहुत ज्यादा बिगड़ गई। उस समय सू की के पति जानलेवा कैंसर से पीड़ित थे।

बर्मा की फौजी सरकार को जब इस बात का पता चला कि सू की के पति जीवन और मौत की अंतिम घड़ियों में हैं तो सरकार ने सू की के सामने एक लेन-देन का प्रस्ताव रखा कि वे इसी शर्त पर ब्रिटेन जा सकती हैं, जब वे लिखित में दें कि वे फिर कभी दोबारा बर्मा नहीं लौटेंगी। सू की ने फौजी सरकार की यह बात मानने से इनकार कर दिया और उसके बाद उनके पति का भी निधन हो गया।

अपने पति की अंत्येष्टि में भी वे नहीं जा सकीं; क्योंकि फौजी सरकार का रुख अभी भी लेन-देन वाला ही था। बर्मा की फौजी सरकार द्वारा उन्हें 14 साल कैद में नजरबंद रखा गया और इन्हें 13 नवंबर सन् 2010 को रिहा किया गया। 'आंग सान सू की' को सन् 1990 में राफ्तो पुरस्कार व विचारों की स्वतंत्रता के लिए सखारोव पुरस्कार, सन् 1991 में नोबेल शांति पुरस्कार, सन् 1992 में अंतरराष्ट्रीय सामंजस्य के लिए भारत सरकार द्वारा जवाहर लाल नेहरू पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह एक दुर्भाग्य ही है कि उन्हें पुन: फौजी सरकार ने नजरबंद कर दिया है।

महान लोगों की श्रेणी में अगले क्रम में हैं—विचारों की धनी, महान लेखिका अगाथा क्रिस्टी। ये उन चर्चित जासूसी लेखकों में से एक थीं, जिनके उपन्यासों की लाखों प्रतियाँ बिकती थीं। अगाथा क्रिस्टी का बचपन बेहद तकलीफों से भरा हुआ और कई परेशानियों से गुजरा था। उनकी पढ़ाई-लिखाई कभी भी व्यवस्थित नहीं रही थी, इसीलिए पूरी जिंदगी वे पढ़ने और सीखने में लगी रहीं।

एक बार की घटना है कि 55 साल की उम्र में वे एक ट्रेन से सफर कर रही थीं। तब तक उनके उपन्यास की 1 अरब प्रतियाँ बिक चुकी थीं और वे 44 भाषाओं में अनुवादित हो चुकी थीं, लेकिन वे जिस ट्रेन में सफर कर रही थीं उसमें उनकी बगल में बैठा हुआ व्यक्ति यह बात नहीं जानता था। वह एक युवा जासूस था। अगाथा क्रिस्टी ने यों ही सफर में बोरियत दूर करने के लिए उससे जान-पहचान बढ़ानी चाही तो उसने अपने को एक बड़ा जासूस बताया और जब अगाथा ने उस पर और उसके कार्य पर दिलचस्पी दिखाई और उससे अपनी सफलता का किस्सा सुनाने के लिए कहा तो वह जासूस उन्हीं के एक उपन्यास की घटना को नमक-मिर्च लगाकर अपनी सफलता के रूप में सुनाने लगा।

अगाथा क्रिस्टी पूरे समय बड़ी रुचि के साथ उसकी तारीफ व सराहना करती हुई कहानी सुनती रहीं। लगभग 24 घंटे बाद जब उनका सफर खतम हुआ तो उन्होंने सफर को शानदार ढंग से बिताने में उस जासूस की मदद करने के लिए धन्यवाद दिया और जब अंत में उस जासूस ने उनका नाम पूछा तो उन्होंने बड़ी सहजता से बताया—अगाथा क्रिस्टी।

सच्चाई जिनके दिल में बसी थी, जिनने भाँति-भाँति के आवरण न ओढ़े और सच के साथ दुनिया में आगे बढ़े ऐसे ही लोगों में से एक हैं—ब्रिटेन के चर्चित पॉप सितारे 'सर क्लिफ रिचर्ड'। दिसंबर, 1999 में एक सर्वेक्षण के दौरान उन्हें दुनिया के सबसे चर्चित ईसाई के रूप में चिह्नित किया गया।

सर्वेक्षण में यह पाया गया कि सर क्लिफ रिचर्ड को लोग पोप जॉन पॉल द्वितीय से भी ज्यादा जानते हैं। क्लिफ का जन्म भारत में उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में हुआ था। उनका वास्तविक नाम हैरी वेब था, पर लखनऊ में रहते हुए वे हीरन बॉब के रूप में मशहूर हुए।

दुनिया में सबसे प्रसिद्ध ईसाई के रूप में ख्याति हासिल करने के बाद जब उनसे बीबीसी के एक पत्रकार ने सवाल किया कि उन्हें एक महान ईसाई होने की प्रेरणा कहाँ से मिली? तो उन्होंने कहा कि मैंने ईसाई प्रार्थनाओं की मानवीयता को बचपन में हिंदुओं के मंदिरों से ग्रहण किया। हालाँकि इस पर बाद में काफी विवाद हुआ, लेकिन फिर भी वे अपने कथन पर अडिग रहे।

दुनिया के महान लोग सिर्फ अपनी खास सफलता के संबंध में ही महान नहीं होते, बल्कि उनकी जिंदगी का एक-एक कदम उनकी किसी-न-किसी खूबी का, उनकी महानता का बखान करता है। इसी क्रम में एक हैं—इस्राइल के सबसे कम उम्र के प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू।

एक बार इनके कार्यकाल के दौरान युगांडा में इस्राइल के विमान का अपहरण कर लिया गया। इस्राइल ने अपहरणकर्त्ताओं से बंधकों को छुड़ाने के लिए कमांडो कार्रवाई की और इसमें उनके बड़े भाई जोनाथन की मौत हो गई, लेकिन जब कमांडो कार्रवाई सफल रही और विमान को युगांडा से इस्राइल लाया गया तो उन्होंने इस कार्रवाई में मारे गए हवाई अड्डे के एक कर्मचारी को सबसे पहले

अपना कंधा दिया और उसे सेल्यूट किया। उन्होंने कभी भी इस कार्रवाई में अपने भाई और बाद में आतंकवाद से लड़ते हुए अपने लगभग पूरे परिवार की कुरबानी को वोट हासिल करने का चुनावी मुद्दा नहीं बनाया।

जाने-माने अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन भी महान लोगों में से एक हैं। महज 23 साल की उम्र में जब उन्हें जाधवपुर विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र का प्रमुख बनाया गया तो उनके वरिष्ठों ने इस बात पर हंगामा खड़ा कर दिया, लेकिन विश्वविद्यालय में उस समय के तत्कालीन कुलाधिपति ने तभी कहा कि अमर्त्य सेन जीवन में बहुत आगे जाएँगे और बाद में ऐसा हुआ भी।

सन् 1998 में अर्थशास्त्र का नोबेल पुरस्कार पाने वाले अमर्त्य सेन ने दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक और लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में पढ़ाया। वे ट्रिनिटी कॉलेज कैंब्रिज (लंदन) के पहले गैर ब्रिटिश प्रमुख बने। जीवन में कई ऊँची सफलताएँ व यश-सम्मान पाने के बावजूद वे हर वर्ष शांतिनिकेतन आते हैं; क्योंकि वे यहीं पले-बढ़े और शिक्षित हुए हैं। यहाँ आकर वे अपनी वही पुरानी जिंदगी जिया करते हैं, जब वे अपने जीवन में कुछ नहीं, बल्कि अन्य लोगों की तरह ही एक सामान्य व्यक्ति थे।

महानता कभी सफलता की, यश-सम्मान व प्रतिष्ठा की मोहताज नहीं होती। महानता तो व्यक्ति की सरलता में निहित होती है। उसकी सोच में बसती है और उसके व्यवहार से झलकती है। जो व्यक्ति परपीड़ा के प्रति जितना संवेदनशील होता है, वह उतना ही महान होता है। जो व्यक्ति जितना अहंकारशून्य होता है, वह उतना ही महान होता है और जो व्यक्ति जितना सरल-सहज व सत्य का पक्षधर होता है, वह उतना ही महान होता है। ❑

राय बहादुर लालचंद जी की गणना पंजाब के श्रेष्ठ समाज सुधारकों में होती थी। उन्होंने कन्या गुरुकुल को एकमुश्त बड़ी धनराशि दान करने की पेशकश की। यह सुनकर गुरुकुल के प्रधानाध्यापक ने निजी तौर पर उन्हें कृतज्ञताज्ञापन करने की सोची। इस उद्देश्य से वे लालचंद जी के घर पहुँचे। काफी देर खटखटाने पर भी जब किसी ने दरवाजा नहीं खोला तो वे द्वार धकेलकर अंदर पहुँचे। उन्होंने देखा कि अंदर एक बूढ़ा व्यक्ति दूसरे बूढ़े व्यक्ति के पैर दबा रहा है। उन्होंने पैर दबाते व्यक्ति से पूछा—"लालचंद जी कहाँ मिलेंगे?" जब उन्हें यह उत्तर मिला कि पैर दबाते व्यक्ति ही लालचंद जी हैं तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने लालचंद जी से पूछा—"जिसके पैर वे दबा रहे थे, वह कौन है?" राय बहादुर लालचंद जी ने उत्तर दिया—"वो मेरा सेवक है। पिछले चालीस वर्षों से उसने मेरी अनवरत सेवा की है और आज उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है तो आज उसकी सेवा की बारी मेरी है।" यह सुनकर प्रधानाध्यापक महोदय का सिर श्रद्धा से झुक गया।

अंतर्जगत की यात्रा है अध्यात्म

ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है, ईश्वर को कहाँ खोजूँ, कैसे खोजूँ—मैं देवालयों में हो आया, मैं तीर्थों में भी हो आया, पर फिर भी मुझे आत्म-उपलब्धि नहीं हो सकी; मुझे परमात्मा की अनुभूति नहीं हो सकी; मुझे आत्मसाक्षात्कार नहीं हो सका—आखिर क्यों?

शास्त्रों में तो तीर्थयात्रा, तीर्थदर्शन, देवदर्शन आदि की बड़ी महिमा गायी गई है। पूजा की, प्रार्थना की, बड़ी महिमा गायी गई है। मैंने ये सारे धार्मिक कृत्य किए, फिर भी मुझे आत्मोपलब्धि आज तक हो ही न सकी—आखिर क्यों?

ये सारे सहज व स्वाभाविक प्रश्न हैं, जो अक्सर हमारे मन में उठा करते हैं। आखिर हमसे भूल कहाँ और कैसे हो रही है? सचमुच इस जीवन का मुख्य लक्ष्य ही है मुक्ति व आनंद को पाना और इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हम धर्म के, अध्यात्म के मार्ग पर चलते हैं।

ऐसा लगता है कि हमारे चलने के तरीके में ही अवश्य कोई खोट है, कोई कमी है, जिसके कारण हम उस मार्ग पर चलते हुए भी मंजिल तक नहीं पहुँच पा रहे हैं। यात्रा के अंतिम पड़ाव मोक्ष, मुक्ति व आनंद तक नहीं पहुँच पा रहे हैं। मात्र चलते हुए दिखना ही उस मार्ग पर चलना नहीं है।

इस संदर्भ में एक रोचक कथा आती है। एक बार एक नाव में कुछ लोग रात्रि को सवार हुए। उनमें से एक व्यक्ति रात भर उस नाव को खेता रहा। पतवार चलाता रहा। उधर पूरी रात नाव खेते गुजर गई। भोर हुआ। सूर्य की लालिमा प्रकट हुई।

तभी उन सबकी नजर उस स्थान पर गई। जहाँ वे रात भर नाव खेने के बाद पहुँच पाए थे। आश्चर्य! घोर आश्चर्य! वे सभी अभी भी वहीं थे, जहाँ से उन्होंने यात्रा शुरू की थी, पर भला ऐसा हुआ कैसे? दरअसल नाव समुद्र किनारे लगे हुए एक खूँटे से एक लंबी रस्सी से बँधी थी।

रात के अँधेरे में लोगों ने उस रस्सी को देखा नहीं। नाव रस्सी में बँधी है, इस ओर उनका ध्यान ही नहीं गया। वे नशे में धुत्त रात भर पतवार चलाते रहे, पर रस्सी से बँधी हुई नाव वहीं तक जा पाई, जहाँ तक रस्सी जा सकती थी। यदि वह रस्सी रात में ही खुल गई होती तो वे सारे सवार न जाने रातोरात कहाँ तक पहुँच जाते। शायद वे अपनी मंजिल तक पहुँच गए होते।

हमारी यात्रा भी कुछ ऐसी ही है। हम धर्म के मार्ग पर, अध्यात्म के मार्ग पर वर्षों से चलते हुए दिख रहे हैं, पर पहुँच कहीं नहीं पा रहे हैं, ऐसा क्यों? क्योंकि हम भी बँधे हुए हैं—किसी बंधन से, किसी आसक्ति से, किसी रस्सी से।

दुर्भाग्य यह है कि हम आसक्ति में बँधे रहकर ही मुक्ति का आनंद पाना चाहते हैं। हम बँधे हुए रहकर ही यात्रा पूरी करना चाहते हैं। हम यात्रा तो करते रहे हैं, पर बाहर-बाहर की। हमें यात्रा बाहर की नहीं, अपने अंदर की करनी है। हमें यात्रा अंतर्जगत की करनी है।

हमें बाहर किसी का अनुकरण नहीं करना है। हमें बाहर किसी का अनुगमन नहीं करना है। बाहर के सभी रास्ते संसार में ले जाते हैं। अस्तु हमें अपनी ही आत्मा का अनुसरण करना है, अनुगमन करना है। हम ईश्वर को, परमात्मा को बाहर ढूँढ़ते रहे, बाहर खोजते रहे, पर परमात्मा तो हमारे भीतर ही मौजूद है।

हमारी आत्मा ही तो शुद्ध-परिशुद्ध होकर, पुनीत व पावन होकर परमात्मा हो जाती है, पर हम तो स्वयं को एक देहमात्र मानते रहे हैं, एक शरीरमात्र मानते रहे हैं। इस देह में ऐसा क्या है, जिसे हम परमात्मा मान लें? हाड़-मांस का शरीर है और वह शरीर भी शीघ्र ही मिट जाने वाला है।

हमारा मन भी चंचल है और उस मन में भी कोई परमात्मा जैसा नहीं है। वस्तुतः शरीर तो हमारी आत्मा का आवरण मात्र है। शरीर आत्मा का वस्त्र मात्र है। शरीर और मन के पार चले जाने पर ही हमें अपनी आत्मा के दर्शन हो पाते हैं।

जैसे एक छोटे से बीज में ही विराट वटवृक्ष समाया हुआ होता है; वैसे ही हमारे शरीररूपी पिंड में स्थित

आत्मा में ही ब्रह्मांडरूपी विराट परमात्मा समाया हुआ है। आत्मा में वह परमात्मरूपी बीज अभी सुषुप्तावस्था में है। इसलिए हमें उसकी पहचान नहीं हो पा रही है, हमें उसके दर्शन नहीं हो पा रहे हैं। हमें उसके अनुभव नहीं हो पा रहे हैं।

शास्त्रीय संदर्भों का यदि कोई स्मरण करे और महापुरुषों के द्वारा प्रदत्त सूत्र-संकेतों को कोई याद करे तो वह इस बात को स्पष्टता के साथ महसूस कर सकेगा कि ईश्वर हमारी ही आत्मा में बीज रूप में सुप्त है, प्रसुप्त है। यदि हम कामना, वासना व आसक्ति के बंधनों को तोड़ दें तो हमारी यात्रा उस ओर स्वयं ही बढ़ती हुई चली जाएगी। हमारा मंदिर की सीढ़ियों पर चढ़ना-उतरना तो हुआ, पर कभी अपने भीतर चलना हुआ नहीं, अपने भीतर उतरना हुआ नहीं। अपने अंदर ईश्वर को खोजना, निहारना कभी हुआ नहीं और वही करना अंतर्जगत की यात्रा कहलाती है।

हम अब तक धर्म के नाम पर, अध्यात्म के नाम पर कुछ चिह्नपूजा, कर्मकांड करते अवश्य रहे, उस मार्ग पर चलते हुए दिखते अवश्य रहे, पर संसार से भी बँधे रहे, आसक्ति से भी बँधे रहे, दुर्गुणों से भी बँधे रहे। स्वयं को हमने इन्हीं दुर्गुणों के माध्यम से संसार से भी बाँध कर रखा। इसलिए देवालयों में जाकर भी, तीर्थों में जाकर भी, धार्मिक कर्मकांडों को करते हुए भी कुछ नहीं करते रहे, कहीं नहीं चलते रहे। बस, बाहर-ही-बाहर चलते रहे।

अंतर्जगत की इस यात्रा पर महावीर भी चले, गौतम भी चले, आचार्य शंकर भी चले, गुरुनानक देव भी चले, मीरा, तुलसी, कबीर भी चले। सूर और रैदास भी चले, पर वे किसी से बँधे रहकर नहीं चले। वे संसार को अपने भीतर छिपाकर नहीं, बल्कि संसार को स्वयं के भीतर से मिटाकर, भुलाकर, आसक्ति के सारे बंधनों को तोड़कर चले। इसलिए वे तीर्थों में सशरीर भ्रमण करते दीखते हुए भी अपने ही भीतर चलते रहे और उनके अपने ही भीतर से, उनकी आत्मा से ही परमात्मा प्रकट हुए।

यह ही कारण था कि परमात्मा का परम आलोक उनकी आत्मा में ही उतर आया। तभी तो वे जहाँ भी रहे, जैसे भी रहे, आनंद से भरे रहे, मस्ती में डूबे रहे। आसक्ति के बंधन से मुक्त रहे। सबको आनंदित करते रहे। वे स्वयं ही सत्-चित्-आनंद हो गए।

वे स्वयं ही करुणा, प्रेम, क्षमा, सेवा, संवेदना के लहराते सागर हो गए। वे स्वयं ही बुद्ध हो गए, वे स्वयं मुक्त हो गए। इसलिए श्रुति कहती है, शास्त्र कहते हैं— परमात्मा कहीं और विराजमान नहीं, वह तो प्रत्येक जीवात्मा के भीतर बीज रूप में विराजमान है। वह तो प्रत्येक चैतन्य के भीतर सोई हुई शक्ति है, जिसे उठाना है, जगाना है। उसका आविर्भाव करना और उसे जाग्रत करना है। जप, तप, ध्यान उसे ही जगाने के लिए तो हैं, जो हमारे भीतर सोया है।

जप, तप, ध्यान के अहर्निश अभ्यास से ही हम आसक्ति के बंधन से, संसार के बंधन से मुक्त होकर शीघ्रतापूर्वक, तीव्रतापूर्वक अपने आत्मसाम्राज्य में प्रवेश कर सकेंगे। हम अपने भीतर उतर सकेंगे। ध्यान के निरंतर अभ्यास से अपने अचेतन मन का परिष्कार करते हुए मन के पार जा सकेंगे और अपने भीतर ही परमात्मा को प्रकट कर सकेंगे।

ऐसा यदि हम कर सकें तो ही हम अंतर्जगत की अपनी यात्रा को पूरी कर सकेंगे, फिर हमें बाहर भी, भीतर भी परमात्मा के दर्शन हो सकेंगे। फिर देह में होते हुए भी हम विदेह हो सकेंगे। कर्म करते हुए भी निष्काम हो सकेंगे। बाहर चलते हुए भी भीतर चल सकेंगे। सर्वत्र परमात्मा-ही-परमात्मा के दर्शन हमें हो सकेंगे।

उस स्थिति में देवालयों में, तीर्थों में, मंदिरों में, गिरजाघरों में, सूर्य, चंद्र, सितारों में खुले अंतरिक्ष आकाश में, सागर की उठती हुई लहरों में, गंगा की तरंगों में, हिमालय की धवल, श्यामल चोटियों में, लहराते-इतराते-खिलते, पुष्प-वनस्पतियों में, पर्वतमालाओं में, नर-नारी, दीन-दुःखियों में, सर्वत्र परमात्मा-ही-परमात्मा के दर्शन हमें हो सकेंगे। अंतरिक्ष और आकाश का अपने ही भीतर दर्शन हमें हो सकेगा, दिग्दर्शन हो सकेगा। अपने शरीररूपी पिंड में ही तब हमें ब्रह्मांड का दर्शन हो सकेगा।

तब हम स्वयं ही सत्-चित्-आनंद हो सकेंगे। हम स्वयं ही करुणा, प्रेम, संवेदना से भरा लहराता सागर हो सकेंगे। तब हम स्वयं ही कह सकेंगे—ईश्वर सत्-चित्-आनंदस्वरूप है। ईश्वर करुणा, प्रेम का लहराता सागर है। ईश्वर यत्र-तत्र-सर्वत्र है। यह पूरा ब्रह्मांड ही ईश्वर का रूप है। ईश्वर ब्रह्मांड के कण-कण में व्याप्त है, संव्याप्त है। उसे अपने भीतर प्राप्त कर लेना ही अध्यात्म है। ❑

सांस्कृतिक विरासत की नगरी अयोध्या

अयोध्या सांस्कृतिक विरासत की नगरी है। यही रामराज्य की परिकल्पना का केंद्र थी। यहीं से सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई। यहाँ पर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान राम का दिव्य मंदिर प्रतिष्ठित था। त्रेतायुग में सर्वप्रथम महाराज कुश ने राम जन्मभूमि पर मंदिर बनवाया था। कहा जाता है कि भगवान श्रीराम के सरयू नदी में तिरोहित होते ही सरयू नदी में भयानक बाढ़ आई, जिसमें अयोध्या का संपूर्ण वैभव नष्ट हो गया। भगवान श्रीराम ने अपने जीवनकाल में ही अपने राज्य को चारों भाइयों के पुत्रों के मध्य में विभाजित कर दिया था। अपने बड़े पुत्र कुश को कुशावती क्षेत्र, जो अयोध्या से दक्षिण विंध्याचल के आस-पास का क्षेत्र है, राज्य बनाने के लिए दिया था।

उन्होंने अपने दूसरे पुत्र लव को अयोध्या से उत्तर श्रावस्ती क्षेत्र, जिसे सरावती कहा जाता था, दिया था। यह मध्य क्षेत्र था। भरत के पुत्रों में से तक्ष को तक्षशिला और पुष्कल को पुष्कलावती (पेशावर) पश्चिम का क्षेत्र दिया था। लक्ष्मण पुत्र चंद्रकेतु को मल्ल देश और अंगद को कारु पथ मध्य पूर्व क्षेत्र सौंपा था। शत्रुघ्न के पुत्र सुबाहु और शत्रुघाती को क्रमशः मथुरा और विदिशा का क्षेत्र दिया था। अपने परिवार के अलावा बाली-पुत्र अंगद को किष्किंधा के साथ दक्षिणापथ दिया था तथा विभीषण को लंका का राज्य प्रदान किया था।

राम के बाद अयोध्या नगरी वीरान हो गई थी। कुश, जिनको कोशल का राज्य मिला था, उन्होंने कुशावती क्षेत्र में कौशांबी को अपनी राजधानी बनाया, मगर कुछ दिनों बाद उन्होंने फिर से अयोध्या को अपनी राजधानी बनाया और राम जन्मभूमि पर सर्वप्रथम भगवान राम का मंदिर बनवाया। उन्होंने श्रीराम की कीर्ति को चिरस्थायी बनाने के लिए उनके जन्मस्थान पर एक भव्य मंदिर का निर्माण कराया। लोमश रामायण के अनुसार यह मंदिर कसौटी पत्थर के 84 खंभों पर बना हुआ था। महाराज कुश के द्वारा श्रीराम जन्मभूमि पर निर्मित मंदिर बना रहा, पूज्य रहा, श्रद्धा का स्थान रहा। अयोध्या में सूर्यवंशी अनेक नरेशों की पीढ़ियाँ बीतती गईं।

एक के बाद एक राजा अयोध्या में राज्य करते रहे, पर मंदिर यथावत् बना रहा, पूज्य रहा। द्वापरयुग में, महाभारतकाल में और उसके बाद कलियुग में ईसा पूर्व छठी शताब्दी के बाद तक गौतम बुद्ध के काल तक यह मंदिर बना रहा। उसके प्रति आस्था एवं विश्वास में कोई कमी नहीं आई। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी तक यह मंदिर यथावत् बना रहा।

इतिहास से ज्ञात होता है कि सबसे पहले ईसा से 150 वर्ष पूर्व यूनानी कुषाण राजा मिनेन्डर ने इस राम मंदिर पर आक्रमण करके इसको ध्वस्त किया। मिनेन्डर ने इस मंदिर पर आक्रमण करने के पूर्व बौद्ध धर्म को स्वीकार करके अपना नाम मिलिंद रख लिया था, ताकि उसको मंदिर को नष्ट करने में जनसमर्थन प्राप्त हो सके। उस समय बौद्ध धर्म का प्रभाव था, उसका वैष्णव धर्म से विरोध था। बौद्धधर्मी हिंदू धर्म का कड़ा विरोध करते थे। उनकी पूजा-पाठ के विरुद्ध थे। उनके मंदिर और मूर्तियों का घोर विरोध करते थे।

राम जन्मभूमि पर महाराजा कुश द्वारा निर्मित मंदिर को सर्वप्रथम राजा मिनेन्डर ने गिराकर अपनी शक्ति प्रदर्शित की थी। यद्यपि हिंदुओं द्वारा उसका प्रबल विरोध किया गया, किंतु राजा मिनेन्डर की सेना की संख्या शक्ति और कौशल के समक्ष वे टिक न सके। तीन माह के अंदर शुंग वंश के राजा द्युमत्सेन ने उसकी राजधानी कौशांबी पर कब्जा कर लिया और मिनेन्डर को मार डाला। राजा द्युमत्सेन ने मंदिर का पुनर्निर्माण करवाया। लगभग सौ वर्ष तक यह मंदिर बना रहा।

महाराज विक्रमादित्य ने ईसा पूर्व पहली शताब्दी में दूसरी बार राम जन्मभूमि पर मंदिर का भव्य निर्माण कराया। मान्यता है कि आज से 21 सौ वर्ष पूर्व महाराजा विक्रमादित्य भारत भ्रमण करते समय अयोध्या पहुँचे, जहाँ उनको वीरान और उजड़ी हुई अयोध्या मिली, परंतु सरयू नदी निर्बाध रूप से प्रवाहित थी। उसका प्रवाह मंद-मंद गति से पूर्ववत् प्रवाहित था। उसका जल पवित्रतम बना हुआ था। सभी

उसमें स्नान करके अपने को धन्य समझते थे। तब राजा विक्रमादित्य ने वहाँ पर मंदिर बनवाया था। राजा विक्रमादित्य द्वारा राम जन्मभूमि पर मंदिर बनाने के संबंध में कई रोचक कथाएँ प्रचलित हैं।

राजा बृहदबल की महाभारत में मृत्यु हो जाने के बाद अयोध्या वैभवहीन हो गई थी। ईसा के जन्म से लगभग सौ वर्ष पूर्व उज्जैन के राजा विक्रमादित्य इसकी खोज करते हुए यहाँ आए। उन्होंने यहाँ पर रामगढ़ का किला बनाया और जंगलों को साफ करके राम, सीता, लक्ष्मण और हनुमान की स्मृतियों से संबंधित स्थलों पर 360 मंदिरों का निर्माण करवाया। यद्यपि इसका उल्लेख किसी संस्कृत ग्रंथ में नहीं मिलता है, परंतु जनसामान्य में यह मौखिक परंपरा बहुत पुरानी रही है।

सन् 1767 ई० में भारत की यात्रा करने वाले ऑस्ट्रिया के जेसुइट पादरी टाइफेनथेलर ने अपने यात्रा-वृत्तांत की पुस्तक, जो सन् 1785 में फ्रेंच भाषा में प्रकाशित हुई, में इस किंवदंती का उल्लेख किया है। इस पुस्तक का लेखक सन् 1766 से सन् 1771 ई० तक अवध में ठहरा था। उसने अयोध्या के विषय में जो कुछ भी लिखा है, वह उस समय का आँखों देखा वर्णन है।

टाइफेनथेलर के अतिरिक्त मॉण्टगोमरी मार्टिन ने भी सन् 1838 में इसका उल्लेख किया है, जो एक ब्रिटिश सर्वेक्षक था। उसकी रिपोर्ट सन् 1838 ई० में प्रकाशित हुई। मार्टिन के अतिरिक्त कनिंघम और कारनेगी ने भी इस घटना का उल्लेख किया है। इस कथा का हिंदी ग्रंथों में अधिक विस्तार से वर्णन मिलता है। कथा कुछ इस प्रकार है—

''एक दिन सरयू तट पर खड़े महाराजा विक्रमादित्य ने देखा कि एक काला हंस आया और उसने सरयू में डुबकी लगाई। डुबकी लगाने के बाद जब वह निकला तो उसका रंग काले के बजाय शुभ्र—श्वेत हो गया। महाराजा की उत्सुकता जागी। उन्होंने उसे अपने योगबल से रोका। तब वह देवस्वरूप में प्रकट हुआ, जिससे महाराजा ने अपनी जिज्ञासा शांत करने को कहा। तब उसने बताया कि वह तीर्थराज प्रयाग है, जिसमें प्रत्येक वर्ष हजारों-लाखों लोग स्नान करके अपने पाप छोड़ जाते हैं, जिससे वह काला हो जाता है।

''इस पाप से मुक्ति पाने के लिए वह प्रत्येक वर्ष पावन अवधपुरी में आकर भगवान श्रीराम के चरणों में समर्पित होकर सरयू जी में स्नान करके अपनी कालिमा समाप्त कर लेता है। जन्मभूमि स्थान जानने की जिज्ञासा जताने पर तीर्थराज प्रयाग ने उन्हें बताया कि अगले दिन एक बुढ़िया वहाँ पर आएगी, वह सभी स्थानों के साथ राम जन्मभूमि स्थान भी बताएगी। वास्तव में दूसरे दिन वहाँ एक वृद्धा आई। उसने जन्मभूमि से लेकर स्वर्गारोहण स्थल तक सभी स्थान उनको बताए, जिनको महाराज विक्रमादित्य ने चिह्नित करके मंदिर बनवाए।''

इसी तरह एक कथा गाय-बछड़े की भी प्रचलित है। ''तीर्थराज प्रयाग ने महाराजा विक्रमादित्य को बताया कि एक गाय-बछड़ा घूमते हुए मिलेंगे और उनका पीछा करके देखते रहो। जिस स्थान पर गाय के थनों से दूध टपकने लगे, वही राम जन्मभूमि स्थान है।'' इस प्रकार महाराजा विक्रमादित्य ने दो हजार वर्ष पूर्व अयोध्या के स्थानों को खोजकर 360 मंदिरों का निर्माण कराया था, जिनमें सबसे प्रमुख मंदिर था जन्मभूमि पर निर्मित राम मंदिर।

इस संबंध में एक तीसरी कथा भी प्रचलित है। कहते हैं—''महाराजा विक्रमादित्य एक दिन प्रात:काल रामनवमी के दिन सरयू किनारे-किनारे भ्रमण कर रहे थे, उन्होंने देखा कि एक काला पुरुष काले घोड़े पर सवार होकर दक्षिण दिशा से आया और सरयू की बहती धारा में प्रवेश कर गया। उसने सरयू के अगाध जल में घोड़े सहित डुबकी लगाई। जब वह सरयू से बाहर निकला, तब वह बिलकुल सफेद हो गया था। उसका घोड़ा भी सफेद हो गया था।

''महाराजा विक्रमादित्य इस अद्भुत दृश्य को देखकर चकित रह गए और आगे बढ़कर जाते हुए घोड़े को रोककर विनम्रता एवं निर्भीकतापूर्वक अश्वारोही से पूछा—भगवन्! बताइए आप कौन हैं? अश्वारोही ने मुस्कराकर कहा—पुत्र! मैं तीर्थराज प्रयाग हूँ। मैं प्रतिवर्ष चैत्र नवमी को अयोध्या आता हूँ और सरयू में स्नान करके पवित्र हो जाता हूँ। मुझे मालूम है कि तुम प्राचीन अयोध्या की खोज करना चाहते हो। इस कारण आज मैं तुम्हारे सामने प्रकट रूप में आया हूँ, वरना गुप्त रूप से आकर गुप्त स्नान करके वापस चला जाता हूँ। मैं तुमको प्राचीन अयोध्या की जानकारी देना चाहता हूँ। यह अयोध्या भगवान राम की पवित्र नगरी है, जिसका तुम जीर्णोद्धार करो।''

''विक्रमादित्य ने कहा—भगवन्! कृपा करके मुझे दिव्यस्थलों का परिचय कराइए, जिससे मैं उनका सुचारु रूप से उद्धार कर सकूँ।' तीर्थराज ने कहा—'तुम अपने

घोड़े पर सवार होकर मेरे साथ-साथ चलो।' विक्रमादित्य ने वैसा ही किया। प्रयागराज दिव्यस्थलों का पता बताते गए और विक्रमादित्य अपने भाले से उन स्थानों पर चिह्न लगाते गए, जिनकी कुल संख्या 360 थी। इन्हीं 360 स्थानों पर उन्होंने मंदिर का निर्माण कराया, जिसमें एक मंदिर राम जन्मभूमि का भी था।''

यही नहीं उन्होंने 'अयोध्या माहात्म्य' नामक पुस्तक की रचना भी संस्कृत में की। अयोध्यापुरी के मंदिरों के जीर्णोद्धार की स्मृति में महाराजा विक्रमादित्य ने अपना विक्रमी संवत् चलाया, जो आज भी चल रहा है। उसको प्रारंभ हुए 2077 वर्ष हो चुके हैं। इसके पहले युधिष्ठिर संवत् चलता था, जो महाराजा विक्रमादित्य द्वारा अयोध्या पुनर्निमाण के समय तक 2426 वर्ष पूरा कर चुका था। अयोध्या की पुनर्स्थापना करने और 360 मंदिरों के निर्माण में महाराजा विक्रमादित्य को 6 वर्ष लग गए।

इन 360 मंदिरों में जो सबसे प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण मंदिर बना था—वह था 'राम जन्मभूमि का राम मंदिर'। यह उपलब्ध प्राचीन साक्ष्यों-प्रमाणों के आधार पर राम जन्म स्थल के पुराने मंदिर के स्थान पर बनाया गया। इस मंदिर में कसौटी के 84 कलात्मक खंभे लगाए गए थे। ऐसा माना जाता है कि इस कसौटी के खंभे लंका विजय के बाद हनुमान जी द्वारा लंका से लाए गए थे; जिनको कुश ने मंदिर-निर्माण में लगाया था। इसके बाद अनेक राजा आए और गए। सदियाँ बीतीं, मगर महाराजा विक्रमादित्य द्वारा निर्मित, जन्मभूमि पर मंदिर खड़ा रहा। उसे किसी ने हानि नहीं पहुँचाई।

लगभग 500 वर्ष के बाद चौथी शताब्दी में महाराजा चंद्रगुप्त प्रथम का शासनकाल आया। उन्होंने अपनी राजधानी पाटिलपुत्र के स्थान पर अयोध्या बनाई, जो कोशल राज्य में थी। वे वैष्णवभक्त थे। इसके बाद स्कंदगुप्त (455-467 ई०) का कार्यकाल आया। इनकी भी राजधानी अयोध्या थी। वे भी विष्णुभक्त थे। उन्होंने अपनी ध्वजा पर गरुड़ चिह्न करा रखा था। उनके भीतरी स्तंभ (वाराणसी से 40 किमी० दूर यह स्थान है) के लेख के अनुसार उन्होंने वहाँ पर भगवान विष्णु की मूर्ति स्थापित कराई थी। दूसरा लेख जो 'गढ़वा' से प्राप्त हुआ है, उससे भी ऐसा ही आभास मिलता है। गढ़वा से प्राप्त स्कंदगुप्त के ही शासनकाल में गुप्त संवत् 148 (467-68 ई०) में उत्कीर्ण एक अभिलेख में भगवच्चित्र कूटस्वामि-पादीय-कोष्ठ का उल्लेख मिलता है। इसमें भगवान श्रीराम के मंदिर का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

जन्मभूमि का यह सुप्रसिद्ध मंदिर सन् 1033 ई० तक अपने पूर्ण वैभव में प्रतिष्ठित था। अयोध्या सांस्कृतिक और आध्यात्मिक केंद्र है। भारतीय जनमानस में अयोध्या आस्था का प्रतीक है। यह प्रतीक हमें जीवन में सहृदयता, उदारता, एवं सहिष्णुता की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करता है। ❑

प्रस्तुत वेला जिससे विश्व मानवता गुजर रही है, परिवर्तन की है। युग-परिवर्तन पूर्व में भी होता रहा है, जिसे सामूहिक विकसित चेतना नाम दिया जा सकता है। यही चेतना बिगड़ी स्थिति को देखते हुए सुनियोजित विधि-व्यवस्था बनाने, प्राणवान प्रतिभाओं को इकट्ठा कर युगधर्म को निबाहने का सरंजाम पूरा करती है। अवतार इसी प्रवाह का नाम है। इन दिनों उसी महाकाल की प्रबल प्रेरणाएँ युग-परिवर्तन के निमित्त नई परिस्थितियाँ विनिर्मित करती देखी जा सकती हैं। आवश्यकता इस बात की है कि समय को पहचानकर, अपने प्रयास भी इसी निमित्त झोंक दिए जाएँ। श्रेय को पाने व अवतार-प्रक्रिया का सहयोगी बनने का ठीक यही समय है। ***—परमपूज्य गुरुदेव***

जल-संरक्षण करता शांतिकुंज

जीवनदायी जल की एक-एक बूँद अमूल्य है और इसे सहेजने की जरूरत है। जल को सहेजने के कई उदाहरण आज हमारे समाज में हैं, उन्हीं में से एक अनुपम उदाहरण शांतिकुंज का भी है; क्योंकि वर्तमान में गायत्री तीर्थ शांतिकुंज अपनी कई आध्यात्मिक व धार्मिक गतिविधियों के साथ-साथ लोगों के समक्ष जल-संरक्षण के क्षेत्र में भी एक मिसाल बन गया है। यहाँ पर रोजाना इस्तेमाल होने वाले जल के पुनर्चक्रण के पुख्ता इंतजाम किए गए हैं।

वर्तमान में शांतिकुंज में लगभग पाँच हजार स्थायी व लगभग छह हजार अस्थायी लोग निवास करते हैं। इस तरह दर्शनार्थियों को मिलाकर लगभग चौदह हजार लोग यहाँ निवास करते हैं। धार्मिक प्रयोजनों के लिए यहाँ आकर रहने वाले लोगों की संख्या समय के हिसाब से घटती-बढ़ती रहती है, लेकिन इतने सारे लोगों के लिए नियमित रूप से स्वच्छ पेयजल व अन्य कार्यों के लिए पर्याप्त जल की व्यवस्था करने का दायित्व शांतिकुंज का है, जिसे शांतिकुंज ने बखूबी निभाया है।

शांतिकुंज में अंत:वासियों और बाहर से आकर अस्थायी निवास करने वालों के लिए दो बड़े भोजनालय हैं। इनमें रोजाना हजारों लोगों का भोजन तैयार होता है। भोजन पकाने के दौरान इस्तेमाल हुए पानी को एकत्र कर उसे सिल्ट, रेत आदि से बनाए गए संयंत्र से छानकर बागवानी, सफाई और धुलाई के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

शांतिकुंज में वर्षाजल के इस्तेमाल और उससे भूगर्भ के रिचार्ज की तो व्यवस्था है ही, साथ ही यहाँ जल को आधुनिक व पुरातन पद्धतियों से भी पीने योग्य बनाया जाता है। वर्तमान में शांतिकुंज के प्रमुख डॉ० प्रणव पण्ड्या के नेतृत्व में जल-संरक्षण के लिए जनजागरण-अभियान भी चलाया जा रहा है। यहाँ जलकल विभाग के विशेषज्ञों के अनुसार—वर्षा का शुद्ध जल स्वास्थ्य के लिए औषधि का काम करता है; क्योंकि इसमें प्रकृतिप्रदत्त सभी तत्त्व मौजूद होते हैं, इसलिए इस पानी का इस्तेमाल पीने, खाना बनाने, स्नान, कपड़े धोने आदि कार्यों में होता है।

अखिल विश्व गायत्री परिवार के प्रमुख डॉ० प्रणव पण्ड्या के अनुसार—हरिद्वार के पानी में आयरन व सिल्ट की मात्रा अधिक है, जिससे इस पानी का इस्तेमाल करने पर कई प्रकार की बीमारियाँ होने का खतरा है। इससे निजात पाने के लिए ही शांतिकुंज ने प्राकृतिक जलशोधक संयंत्र का निर्माण कराया है, जो कई तरीके से फायदेमंद है।

गायत्री तीर्थ शांतिकुंज ने फरवरी, 2017 में जलशोधन के क्षेत्र में उत्तराखंड में पहला प्राकृतिक जलशोधक संयंत्र स्थापित किया। इसकी क्षमता प्रतिघंटे 50 हजार लीटर जल को स्वच्छ करने की है। यहाँ पानी में घुलनशील आयरन व सिल्ट को एरिएटर के माध्यम से हवा व धूप के संपर्क में लाकर इसमें घुले हुए आयरन तत्त्व को कम किया जाता है। फिर फिटकरी और ब्लीचिंग तत्त्व मिलाकर इसमें घुले सिल्ट को 'फ्लोकुलेटर' से 'फ्लोक्स' बनाकर 'क्लियरिफायर' के माध्यम से साफ किया जाता है।

इसके बाद जल में मौजूद आयरन व सिल्ट को कम करने के लिए उसे प्राकृतिक पद्धति से विशेष रूप से तैयार 'फिल्टर' से छाना जाता है। इस प्रक्रिया में पानी को बालू, रेत, बजरी, ग्रेवल, पेवल, बोल्डर की कुल दस परतों के 'रैपिट ग्रेविटी फिल्टर' के माध्यम से छानकर उसे सप्लाई टैंक में एकत्र किया जाता है। इस प्रक्रिया में पानी की एक-एक बूँद का इस्तेमाल होता है। इसके अतिरिक्त विगत दिनों परमाणु ऊर्जा आयोग द्वारा एक प्राकृतिक व अत्याधुनिक जलशोधक यंत्र भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय को उपहार में दिया गया है।

इस तरह जल-संरक्षण व जल के शुद्धीकरण की दिशा में शांतिकुंज ने देश व समाज के समक्ष एक अद्भुत मिसाल प्रस्तुत की है, जिसे कोई भी देख सकता है और इससे संबंधित जानकारियों को उपलब्ध कर सकता है। ❑

आधुनिक भारत के नवनिर्माण में सरदार वल्लभभाई पटेल का योगदान

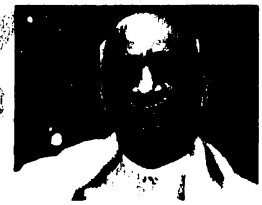

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के सूत्रधारों में सरदार वल्लभभाई पटेल का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सरदार पटेल का आगमन लगभग उसी वक्त हुआ, जब महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटकर इसे व्यापक जनाधार देने में जुटे थे।

इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि स्वतंत्रता आंदोलन को व्यापक जनाधार देने में जितनी भूमिका सरदार पटेल ने निभाई, उतनी अन्य किसी भी नायक ने नहीं निभाई और जब ब्रिटिश अंतत: भारत छोड़ने के लिए बाध्य हुए तो उसके पश्चात तत्कालीन भारत को आज का संगठित स्वरूप देने में उनका योगदान सर्वाधिक रहा।

देशी रियासतों को भारत के एक छत्र के नीचे लाने में सरदार पटेल जो कि उस समय उपप्रधानमंत्री एवं गृहमंत्री थे, उन्होंने एक शक्तिशाली संयोजक की भूमिका निभाई थी। यही कारण था कि उन्हें लार्ड वेवेल ने 'भारत का बिस्मार्क' घोषित किया।

जे०आर०डी० टाटा ने अपने संस्मरण में यहाँ तक कहा कि 'जब वे महात्मा गांधी से मिले तो वे उनसे साहस एवं प्रेरणा प्राप्त करते थे, किंतु एक संशय सदैव बना रहता था। जब वे नेहरू से मिले तो उन्हें एक भावुक क्रांतिकारी, किंतु परेशान एवं विकल व्यक्ति मिला, लेकिन जब वे सरदार पटेल से मिले तो उन्हें भारत के भविष्य के संदर्भ में एक ऊर्जावान एवं आत्मविश्वास से परिपूर्ण व्यक्ति मिला। मैं कई बार यह सोचता हूँ कि नेहरू की अपेक्षा सरदार पटेल भारत का नेतृत्व सँभालते तो भारत को निश्चय ही एक पृथक दिशा मिलती एवं इसकी आर्थिक स्थिति आज से बेहतर होती।'

भारत के स्वतंत्रता संग्राम को विशाल जनाधार देने में सरदार पटेल द्वारा उद्घोषित एवं कार्यान्वित खेड़ा आंदोलन (1918) एवं बारडोली आंदोलन (1928) की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। इतिहासकार पट्टाभि सीतारमैया के अनुसार 'खेड़ा आंदोलन भारत के स्वतंत्रता इतिहास में इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि इसके द्वारा दो महान नायक गांधी एवं पटेल करीब आए। वे दोनों धीरे-धीरे एकदूसरे के पूरक बन गए। यदि गांधी ने आंदोलन को आत्मा प्रदान की तो पटेल ने इसे बाहुबल प्रदान किया।

'यह सरदार पटेल की व्यापक लोकप्रियता ही थी कि वे लाखों लोगों को एक दल के तहत लामबंद करने में सफल रहे। वे भारतीय आंदोलन को इसके इतिहास, संस्कृति एवं चिंतन में आरूढ़ करना चाहते थे। जिस समय देश में समाजवादी एवं प्रगतिशील आंदोलन जन्म ले रहा था, उन्होंने उससे हटकर स्वतंत्रता संग्राम को स्वदेशी जामा पहनाया। उन्होंने न केवल कांग्रेस को प्रगतिशील खेमे में जाने से बचाया, बल्कि इसके विकट परिणामों से भी जनता को आगाह कराया।'

सरदार पटेल के अनुसार—''देश के श्रमिक जनता का एक अंश हैं, न कि एक भिन्न वर्ग। उनकी संस्कृति एवं प्रथाएँ देश के लोगों की साझी विरासत हैं। उनकी समस्याएँ अधिकार एवं परिणामस्वरूप भारत की परिस्थितियों के अनुसार ही सुलझाई जा सकती हैं। कोई भी विदेशी विचारधारा और कार्यप्रणाली, जो वहाँ की परिस्थिति के अनुरूप है, भारत के परिवेश में आशाजनक परिणाम व्युत्पन्न नहीं कर सकती। समय की आवश्यकता एक स्वदेशी आंदोलन की है, जो कि यहाँ की परिस्थितियों, इतिहास, संस्कृति एवं प्रथाओं के अनुरूप हो। इसी तरह का आंदोलन देश में आगे बढ़ रहा है और इसमें आशानुरूप परिणाम भी प्राप्त हुए हैं। एक ऐसा आंदोलन आज अपरिहार्य हो गया है, जो कि श्रमिक-हितों के साथ सभी पीड़ित वर्गों को सामाजिक न्याय प्रदान करे। शांति एवं सुरक्षा प्रदान करना इसका प्रमुख उद्देश्य होगा, जो कि एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में ही संभव होगा, जिसमें सभी को उचित स्वतंत्रता एवं अधिकार प्राप्त होंगे।''

सरदार पटेल ने महात्मा गांधी के साथ मिलकर देश में एक नवचेतना का संचार किया। उन्होंने शिक्षा एवं सरकारी कार्यों में हिंदी भाषा के प्रयोग पर बल दिया। उनके अनुसार—स्वतंत्रता आंदोलन में शिक्षा की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

यही कारण था कि उन्होंने स्त्री एवं पुरुष सभी की शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया। यह सरदार पटेल के सहयोग से ही संभव हुआ कि असहयोग आंदोलन के लिए 615 लाख रुपये एकत्र हुए तथा लगभग 3 लाख नए सदस्यों ने असहयोग आंदोलन में अपनी सहभागिता प्रदान की।

जब सरदार पटेल ने भारत के उप प्रधानमंत्री एवं प्रथम गृहमंत्री का कार्यभार सँभाला तो लगभग 565 देशी रियासतों को एकीकृत करने का विशाल कार्य उनके सम्मुख था। इसे उन्हें लगभग 40 दिनों में पूर्ण करना था। सरदार पटेल ने यह कार्य एक रक्तहीन क्रांति द्वारा सफलतापूर्वक पूर्ण किया। इसमें कुछ अपवाद भी थे, जहाँ थोड़ी-बहुत शक्ति का प्रयोग भी अनिवार्य हुआ, जैसे कि जूनागढ़, हैदराबाद एवं कश्मीर में।

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम में यह प्रावधान था कि देशी रियासतें या तो भारत में विलय हो सकती हैं या फिर पाकिस्तान में। वे स्वतंत्र रहने का निर्णय भी ले सकती थीं, किंतु ऐसा करते वक्त उन्हें भौगोलिक समीपता, जनसंख्या के सामुदायिक स्वरूप एवं जनेच्छा का भी ध्यान रखना था।

ऐसे में जहाँ अधिकतर रियासतों ने भारत या पाकिस्तान में विलय की घोषणा की, वहीं कश्मीर एवं हैदराबाद ने स्वतंत्र रहने की इच्छा व्यक्त की। जूनागढ़ जो कि एक हिंदूबहुल राज्य था—के नवाब ने पाकिस्तान में विलय का निर्णय किया, जिसका हिंदुओं द्वारा प्रतिरोध हुआ। फलस्वरूप लोकनिर्णय द्वारा जूनागढ़ ने भारत में विलय का रास्ता चुना। इसी प्रकार सरदार पटेल के कुशल नेतृत्व एवं निर्णयों द्वारा जैसलमेर, जोधपुर, भोपाल, त्रावणकोर जैसे बड़े राज्यों ने भारत के पक्ष में विलीनीकरण का मसौदा (दस्तावेज) हस्ताक्षरित किया।

इसके विपरीत हैदराबाद के निजाम ने विलीनीकरण पर हस्ताक्षर से मना कर दिया तथा स्वतंत्र रहने का निर्णय लिया। एक हिंदूबहुल रियासत होने के अलावा तेलंगाना उपद्रव के समक्ष यह निर्णय अतार्किक, पक्षपातपूर्ण एवं भारतीय स्वतंत्रता-अधिनियम के विरुद्ध था। यद्यपि माउंटबेटन एवं जवाहरलाल नेहरू ने इस विषय में आपातकालीन बैठक भी बुलाई, लेकिन तब तक सरदार पटेल सेना को आदेश दे चुके थे।

यह उन्हीं की दिव्यदृष्टि थी कि उन्होंने हैदराबाद को कश्मीर की तरह नासूर नहीं बनने दिया। पाँच दिन तक भारतीय सेना एवं निजाम के रजवाड़े जो कि मुसलिम कुलीन वर्ग से संबंधित थे—के मध्य चले इस युद्ध में उन्होंने हैदराबाद को जीतकर भारत में विलय कर दिया गया। नवंबर 1948 में निजाम ने विलीनीकरण दस्तावेज पर भी हस्ताक्षर कर दिए। इस प्रकार हैदराबाद समस्या का समाधान हुआ।

यह भारत की बदकिस्मती ही थी कि जिस कश्मीर समस्या से देश आज भी जूझ रहा है, वह यदि सरदार पटेल की योजना कार्य करती तो भारत का पूर्ण हिस्सा होता, पाक अधिकृत कश्मीर को मिलाकर तथा भारत की सीमाएँ अफगानिस्तान, किर्गिस्तान के साथ मिली होतीं एवं भारत की संप्रभुता को चुनौती देने वाला सी०पी०ई०सी० (चीन-पाकिस्तान-आर्थिक-गलियारा) कैसी भी संभावना से भी दूर होता।

किसी कारणवश कश्मीर का भारत में समय रहते विलय न हो सका तथा कबायली आक्रमण (22 अक्टूबर, 1987) के पश्चात आधा भू-भाग (40 प्रतिशत) पाकिस्तान के कब्जे में रह गया। जब भारतीय सेनाएँ तेजी से कश्मीर को मुक्त करा रही थीं, ऐसे में मामले को संयुक्त राष्ट्र में ले जाना एवं युद्धविराम की इकतरफा घोषणा करना, आज भी अनेकों की समझ से परे है। यही नहीं, बिना सरकार एवं जनमत को विश्वास में लिए भारत को कश्मीर में जनमत संग्रह के लिए प्रतिबद्ध करना हमारी प्रमुख विफलताएँ रहीं तथा सरदार पटेल इससे अत्यधिक क्षुब्ध थे।

यह सरदार पटेल की दूरगामी सोच एवं कठोर निर्णयों का ही परिणाम था कि एक रक्तहीन क्रांति द्वारा संपूर्ण भारत को एकछत्र संप्रभुता के अधीन लाया गया। यदि कश्मीर का मामला उनके अधीन होता अथवा उन्हें हैदराबाद की तरह ही कश्मीर में स्वतंत्र रूप से कार्य करने दिया जाता तो आज कश्मीर का यह स्वरूप न होता। यदि इतिहास के पन्ने खँगाले जाएँ तो पता चलता है कि जब पाकिस्तान ने हिंदूबहुल जूनागढ़ के विलय को स्वीकृत किया तो कश्मीर, जहाँ पर हिंदू-मुसलमान जनसंख्या लगभग समान थी (कुछ प्रतिशत ही मुसलिम अधिक थे), पर पटेल ने पुनर्विचार किया और राजा हरिसिंह के कबायली आक्रमण के पश्चात भारत में विलय का पुरजोर समर्थन किया।

जहाँ पटेल ने महिलाओं के समान अधिकारों की वकालत की, वहीं आज का स्वच्छता अभियान भी उन्हीं के विचारों से प्रेरित है। सर्वप्रथम उन्होंने यह कार्य सन् 1920

में अहमदाबाद में 222 दिनों के लंबे सफाई-अभियान द्वारा किया, जब वे वहाँ के मेयर थे। वे अल्पसंख्यक उप-समिति के अध्यक्ष भी थे तथा उन्होंने अल्पसंख्यकों की सुरक्षा (विशेषकर पंजाब एवं बंगाल में) के लिए अनेकों कदम उठाए थे। वे सांप्रदायिक चुनावों के विरुद्ध थे, किंतु अल्पसंख्यकों एवं हरिजनों को उचित प्रतिनिधित्व देने के पक्षधर भी थे। उन्होंने उन हरिजनों के लिए भी आरक्षण की माँग की, जिन्हें सिख धर्म में समानता प्राप्त नहीं हुई। अंततः हम कह सकते हैं कि सरदार पटेल वास्तव में भारतीय स्वतंत्रता के मुख्य नायक थे, उनके बिना गांधी और नेहरू का नेतृत्व अपूर्ण था। उन्होंने न केवल देश को एकीकृत किया, बल्कि धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक न्याय, महिला सशक्तीकरण एवं गरीबी-उन्मूलन में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। ❑

आखेट की खोज में भटकता शवर नील पर्वत की गुफा में जा पहुँचा। वहाँ पर भगवान नीलमाधव की मूर्ति के दर्शन करते ही शवर के हृदय में भक्ति-भावना का स्त्रोत उमड़ पड़ा। वह हिंसा छोड़कर उपासना में संलग्न हो गया।

उन्हीं दिनों मालवराज इंद्र प्रद्युम्न किसी तीर्थ में मंदिर बनवाना चाहते थे। उन्होंने स्थान की खोज हेतु अपने मंत्री विद्यापति को भेजा। विद्यापति ने वापस जाकर राजा को नील पर्वत पर शवर द्वारा पूजित भगवान नीलमाधव की मूर्ति की सूचना दी।

विद्यापति राजा इंद्र प्रद्युम्न को उक्त गुफा के पास लेकर आए, किंतु उनके वहाँ पहुँचने पर मूर्ति अदृश्य हो गई। यह देखकर राजा को क्रोध आया। उन्हें क्रोधित होते हुए देखकर विद्यापति बोले—"राजन्! आप यहाँ क्या भावना करते हुए आए हैं?"

थोड़ा शांत होने पर राजा ने उत्तर दिया—"मेरे मन में यह भाव था कि इस शवर को यहाँ से हटाकर एक भव्य मंदिर की स्थापना करूँ।" विद्यापति बोले—"राजन्! भगवान भव्यता के नहीं, भक्ति के भूखे हैं, तभी वे अयाचित शवर को तो दर्शन देते हैं, पर आपके समक्ष अंतर्धान हो गए हैं। समदर्शी भगवान हृदय की भावना मात्र ही देखते हैं।"

राजा ने अपनी भूल सुधारी, भगवान से क्षमा-याचना की और शवर को पूर्ण सम्मान देते हुए उस स्थान पर जगन्नाथ जी के मंदिर की स्थापना कराई, जो आज प्रभु की साक्षात् उपस्थिति के रूप में प्रसिद्ध है।

ईश्वर की शरणागति से मिलता है शाश्वत सुख

जाने-अनजाने व्यक्ति से कई बार ऐसी गलतियाँ हो जाती हैं, जिनसे वह बहुत दुःखी होता है। कई बार हम जान-बूझकर कोई गलती कर बैठते हैं। हम हिंसा, अनीति, अनाचार, व्यभिचार, भ्रष्टाचार आदि कृत्यों में शामिल होते हैं, पर कई बार हम बुरे कर्म करना नहीं चाहते, पर फिर भी हम स्वयं को बुरे कर्म करने से रोक नहीं पाते। हम स्वयं को रोकना तो चाहते हैं, पर रोक नहीं पाते। हमारा स्वयं पर नियंत्रण ही नहीं होता। परिणामतः हम मन के बहकावे में आकर न चाहते हुए भी बुरे कर्मों में लिप्त हो जाते हैं।

दरअसल हमारा अचेतन मन जब हमारे पूर्वजन्म या इस जन्म में किए गए बुरे कर्म संस्कारों से भरा हुआ होता है तो उसका प्रवाह इतना प्रबल होता है कि उसके प्रवाह के प्रभाव में आकर हम स्वयं को बुरे कर्म करने से नहीं रोक पाते और जब हमारा अचेतन शुभ कर्मों के संस्कारों से भरा हुआ होता है तो उन संस्कारों के प्रबल प्रवाह में बहते हुए हम स्वभावतः ही शुभ कर्म, पुण्य कर्म आदि करने के लिए प्रेरित होते हैं।

चूँकि हमारी आत्मा सत्-चित्-आनंदस्वरूप परमात्मा का ही स्वरूप है; इसलिए हमारी आत्मा को सत् चित्त, पवित्र-पुनीत चित्त, प्रिय लगता है, आनंददायी लगता है। जब हम सच्चाई के मार्ग पर चलते हैं, ईश्वर के मार्ग पर चलते हैं तब हमें आत्मिक आनंद की अनुभूति होती है। सेवा, परोपकार, दान, क्षमा आदि अच्छे कर्म करने पर हमें आत्मसंतोष होता है, पर दुराचार, व्यभिचार, पापाचार, भ्रष्टाचार आदि करने पर हमें आत्मग्लानि होती है। क्यों? क्योंकि जीवात्मा परमात्मा का अंश होने के कारण आनंद प्रिय है, सत्य प्रिय है।

परमात्मा करुणा के सागर हैं, प्रेम के सागर हैं, ज्ञान के सागर हैं। अतः हृदय में करुणा, प्रेम और ज्ञान की लहरें उठते ही, बहते ही जीवात्मा को परम आनंद की अनुभूति होती है। मन पवित्र हो जाने पर हमारी आत्मा आनंद से भर उठती है। हमारा मन शांत, प्रशांत हो उठता है। इस संसार में कोई भी दुःख पाना नहीं चाहता। न तो अच्छे कर्म करने वाले, न तो बुरे कर्म करने वाले।

अच्छे-बुरे सभी लोग सुख ही पाना चाहते हैं; क्योंकि सुख ही, आनंद ही आत्मा का मूल स्वभाव है। सुख पाने के लिए ही कोई दान, पुण्य, परोपकार आदि अच्छे कर्म करता है और चोरी, हत्या, लूट, व्यभिचार, दुराचार, भ्रष्टाचार आदि कृत्य भी व्यक्ति दुःख पाने के लिए नहीं, बल्कि सुख पाने की आशा में ही करता है; क्योंकि सुख, आनंद ही जीवात्मा का मूल स्वभाव है। कोई चोरी, भ्रष्टाचार कर खूब धन अर्जित करना चाहता है; विषयभोगों का भरपूर भोग करना चाहता है। क्यों? क्योंकि उस धन से, उस भोग से उसे सुख पाने की आशा होती है, जो कभी पूरी नहीं हो पाती।

शरीरगत, विषयगत, पदार्थगत सुख, बुरे कर्म से अर्जित सुख भला सत्-चित्-आनंदस्वरूप आत्मा को कैसे तृप्त कर सकता है? धन-दौलत से उसे सुख की अनुभूति नहीं होती; क्योंकि बुरे कर्म करते रहने से उसके अंदर भय भरा होता है। उसका मन किसी अनहोनी की आशंका से हमेशा आशंकित रहता है, आतंकित रहता है, भयभीत रहता है। उसके अंदर हाहाकार मचा रहता है। आत्मग्लानि से उसकी आत्मा हाहाकार कर उठती है। उसका सुख-चैन समाप्त हो जाता है।

बुरे कर्मों को, अशुभ कर्मों को, पाप कर्मों को आत्मा कभी भी स्वीकार नहीं कर पाती। क्यों? क्योंकि वैसे कर्म उसकी प्रकृति के अनुकूल नहीं होते, उसके स्वभाव के अनुकूल नहीं होते। जैसे शरीर विजातीय तत्त्वों को शरीर से निष्काषित करने को बेचैन रहता है, उन्हें बरदाश्त नहीं कर पाता तथा उन्हें बाहर निकालने को विद्रोह करता रहता है— वैसे ही हमारी आत्मा भी बुरे कर्मों को बरदाश्त नहीं कर पाती और उन कर्मों से मुक्त होने को विद्रोह करती है।

हम सुख की तलाश में जीवन भर विषयभोगों में ही रचे-बसे रहते हैं, पर विषयभोगों व पदार्थगत साधनों से प्राप्त सुख से भी हम सुखी नहीं हो पाते। हमारा मन तब भी उद्विग्न व अशांत ही बना रहता है। दुर्लभ मानव जीवन यों ही बीत जाने, समाप्त होते जाने के दुःख से हम और भी दुःखी व अशांत हो जाते हैं। हम ग्लानि से भर उठते हैं। भय से भर

उठते हैं। फिर ग्लानि व पीड़ा से हाहाकार करती हुई अपनी आत्मा के कारण ही तो शाश्वत सुख व शांति पाने के लिए अंतत: बुरे-से-बुरे व्यक्ति को भी अपनी आत्मा का अनुसरण करना ही पड़ता है, अनुगमन करना पड़ता है।

एक दिन अपनी अंतरात्मा की आकुल पुकार पर जीवात्मा को ईश्वर के मार्ग पर, सच्चाई के मार्ग पर, अध्यात्म के मार्ग पर चलने को विवश होना ही पड़ता है। जीवात्मा को आत्मा का अनुगमन, अनुशरण करना ही पड़ता है। उसे आनंद के वास्तविक स्रोत, सुख के शाश्वत स्रोत ईश्वर से जुड़ना ही पड़ता है। उसे ईश्वर की शरण में जाना ही पड़ता है।

हमारे लिए ईश्वर की शरणागति ही एकमात्र उपाय है। ईश्वर की शरणागति में ही निर्भयता है और जहाँ निर्भयता है, वहीं आनंद है, वहीं परमानंद है। हम वर्तमान में जैसे भी हों, कैसे भी हों, बुरे-से-बुरे ही क्यों न हों, ईश्वर की शरण हमारे लिए भी सुलभ है। जो मनुष्य सच्चे हृदय से भगवान की शरण में चला जाता है, भगवान उसके संपूर्ण पापों को माफ कर देते हैं। यह स्वयं भगवान की उद्घोषणा भी है कि सच्चे हृदय से जो कोई भी उनकी शरण में जाता है, वे उसे स्वीकार करते हैं, उसका त्याग नहीं करते। गीता में भगवान कहते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच:॥
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्य: सम्यग्व्यवसितो हि स:॥

—गीता 18.66/9.30

अर्थात 'संपूर्ण धर्मों को अर्थात संपूर्ण कर्मों को मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं तुझे संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा। तू शोक मत कर।' और 'अगर कोई दुराचारी-से-दुराचारी भी अनन्य भक्त होकर मेरा भजन करता है तो उसको साधु ही मानना चाहिए। कारण कि उसने अब बहुत अच्छी तरह से निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है।'

वाल्मीकि रामायण (6.18.33) में भी भगवान कुछ ऐसी ही उद्घोषणा करते हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

अर्थात जो एक बार भी मेरी शरण में आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर रक्षा की याचना करता है, उसे मैं संपूर्ण प्राणियों से अभय कर देता हूँ। यह मेरा व्रत है।

बिलकुल ऐसी ही उद्घोषणा भगवान श्रीराम ने रामचरितमानस की प्रस्तुत चौपाई में की है—

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू।
आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

अर्थात भगवान श्रीराम कहते हैं कि जिसे करोड़ों ब्राह्मणों की हत्या लगी हो, शरण में आने पर मैं उसे भी नहीं त्यागता। जीव ज्यों ही मेरे सम्मुख होता है, त्यों ही उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं।

व्यक्ति से जीवन में बड़ी-से-बड़ी भूल क्यों न हुई हो, व्यक्ति से बड़े-से-बड़े अपराध, व्यभिचार, दुराचार क्यों न हुए हों, वह हर तरह से अधम, नीच और पापी ही क्यों न हो, पर फिर भी वह यदि सच्चे मन से ईश्वर की शरण में जाता है, तब उसका एक नया जन्म होता है; क्योंकि ईश्वर की शरण पाकर, ईश्वर की भक्ति के प्रभाव से व्यक्ति का हृदय पवित्र हो जाता है।

उसके द्वारा पूर्व में किए गए नीच कर्मों के कारण उसके मन में जो भय व्याप्त है, जो अँधेरा व्याप्त है एवं जिन कुकर्मों के कारण वह अँधेरा है—वे सब मिट जाते हैं। उसे एक नूतन जीवन-दृष्टि मिल जाती है। उसका एक नया जन्म होता है।

यह कुछ वैसा ही, जैसे रत्नाकर का जीवन बदल गया। ब्रह्म की शरण पाकर, ब्रह्म में लीन होकर वे स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो गए। बुद्ध की शरण पाते ही अंगुलिमाल बौद्धभिक्षु बन गया। बुद्ध की शरण पाकर आम्रपाली बौद्धभिक्षुणी बन गई। जब ध्रुव को उनकी विमाता ने पिता की गोद से उतार दिया, तो ध्रुव को बहुत दु:ख हुआ।

तब नारद जी ने उन्हें समझाते हुए कहा—"पुत्र! तुम्हारी विमाता तुम्हें पिता की गोद से उतार सकती है, पर यदि तुम परमपिता की शरण में जाकर परमपिता की गोद में बैठ जाओ तो तुम्हें परमपिता की गोद से कोई नहीं उतार सकता; क्योंकि वे सबके पिता हैं। वे परमपिता हैं। यदि हो सके तो तुम भगवान श्री विष्णु के चतुर्भुज रूप का अपने

हृदयकमल में ध्यान करो। एक दिन प्रभु की कृपा तुम पर अवश्य होगी।''

नारद जी के कहने पर बालक ध्रुव ने ऐसा ही किया। वे अपने घर का त्याग कर भगवान श्रीहरि का ध्यान करने लगे और अंततः उनकी सच्ची भक्ति को देखकर प्रभु प्रकट हुए और उन्हें हृदय से लगा लिया। बालक प्रह्लाद ने भी तो अपनी भक्ति से ही प्रभु को प्रसन्न किया था।

हमें सारे संसार ने भले ही ठुकरा दिया हो। भले ही अब संसार में अपना कोई सहारा न बचा हो, पर प्रभु तो अनाथों के नाथ हैं। उनका सहारा तो हमारे लिए बचा ही है। अस्तु हम हताश-निराश क्यों हों? दुःख के आवेग में आकर हम कोई गलत कदम क्यों उठाएँ? हम मरने, आत्महत्या करने की बातें सोचकर इस दुर्लभ मानव जीवन को नष्ट करने का पाप क्यों करें? क्योंकि दुनिया का साथ भले ही न हो, प्रभु तो हमारे साथ हैं। हमें प्रभु का सहारा तो मिल ही सकता है।

हम जैसे भी हों करुणानिधान प्रभु हमें अवश्य अपनाएँगे—ऐसी सच्ची भावना के साथ यदि हम प्रभु के चरणों में समर्पण कर दें तो प्रभु हमें अवश्य अपनाएँगे। जब रावण ने विभीषण को भरी सभा में लात मारकर, कड़वी बातें कहकर अपमानित किया तो विभीषण जी के लिए भी प्रभु की शरण में जाने के अलावा दूसरा कोई उपाय बचा नहीं। उन्होंने मन-ही-मन संकल्प कर लिया कि अब मुझे प्रभु श्रीराम जी की ही शरण में जाना है। वे लंका का सुख-वैभव, दुष्टों का संग त्यागकर समुद्र के किनारे बैठे प्रभु श्रीराम से मिलने चल पड़े।

वे रास्ते में चलते हुए मन-ही-मन प्रभु की सुंदर छवि की कल्पना करते जा रहे थे। वे कल्पना कर रहे थे कि मैं जाकर भगवान के कोमल और लाल वर्ण के सुंदर चरण कमलों के दर्शन करूँगा, जो सेवकों को सुख देने वाले हैं, जिन चरणों का स्पर्श पाकर ऋषिपत्नी अहल्या तर गईं और जो दंडक वन को पवित्र करने वाले हैं। जिन चरणों को जानकी जी ने हृदय में धारण कर रखा है और जो चरणकमल साक्षात् शिव जी के हृदयरूपी सरोवर में विराजते हैं—मेरा अहोभाग्य है कि उन्हीं को आज मैं देखूँगा।

जैसे ही वे प्रभु श्रीराम के निकट पहुँचे, वैसे ही भगवान के स्वरूप को देखकर उनके नेत्रों में जल भर आया और उनका शरीर अत्यंत पुलकित हो गया। फिर मन में धीरज धर कर उन्होंने भगवान से कहा—''हे नाथ! मैं रावण का भाई हूँ। मेरा जन्म राक्षसकुल में हुआ है। मेरा तामसी शरीर है, स्वभाव से ही मुझे पाप प्रिय है, जैसे उल्लू को अंधकार पर सहज स्नेह होता है। मैं आपका सुयश सुनकर आया हूँ कि प्रभु जन्म-मरण के भय का नाश करने वाले हैं, वे दुःखियों के दुःख दूर करने वाले और शरणागत को सुख देने वाले हैं। श्री रघुवीर! मेरी रक्षा कीजिए। रक्षा कीजिए।''

मानसकार के अनुसार, प्रभु ने उन्हें (विभीषण को) ऐसा कहकर दंडवत् करते हुए देखा तो वे अत्यंत हर्षित होकर तुरंत उठे। विभीषण जी के दीन वचन प्रभु के मन को बहुत ही भाए। उन्होंने अपनी विशाल भुजाओं से पकड़कर उन्हें हृदय से लगा लिया।

विभीषण जी बोले—''हे प्रभु! अब आपके चरणों का दर्शन कर कुशल से हूँ। तब तक जीव की कुशल नहीं और न स्वप्न में ही उसके मन को शांति है, जब तक वह शोक के घर काम (विषय-कामना) को छोड़कर श्रीराम जी को नहीं भजता। लोभ, मोह, मत्सर (डाह), मद और मान आदि अनेक दुष्ट तभी तक हृदय में बसते हैं, जब तक कि धनुष-बाण और कमर में तरकस धारण किए हुए श्रीरघुनाथ जी हृदय में नहीं बसते। ममता पूर्ण अँधेरी रात है, जो राग-द्वेषरूपी उल्लुओं को सुख देने वाली है। वह ममतारूपी रात्रि तभी तक जीव के मन में बसती है; जब तक आपका प्रतापरूपी सूर्य उदय नहीं होता।''

विभीषण जी ने आगे कहा—''हे प्रभु! आपके चरणारविंद के दर्शन कर अब मैं कुशल से हूँ। मेरे सारे भय मिट गए। हे कृपालु! आप जिस पर अनुकूल होते हैं, उसे तीनों प्रकार के भवशूल (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ताप) नहीं व्यापते। मैं तो अत्यंत नीच स्वभाव का राक्षस हूँ। मैंने कभी शुभ आचरण नहीं किया, पर फिर भी प्रभु ने स्वयं हर्षित होकर मुझे अपने हृदय से लगा लिया। हे कृपा और सुख के पुंज श्रीराम जी! मेरा अत्यंत सौभाग्य है कि आज मैंने ब्रह्मा और शिव जी द्वारा सेवित युगल चरणकमलों को अपने नेत्रों से देखा।''

तब विभीषण के भक्तिपूर्ण वचनों को सुनकर प्रभु श्रीराम जी बोले—''हे सखा! सुनो मैं तुम्हें अपना स्वभाव कहता हूँ, जिसे काकभुशुंडि, शिव जी और पार्वती जी भी जानते हैं। कोई मनुष्य संपूर्ण जड़-चेतन जगत का भी द्रोही क्यों न हो, यदि वह भी भयभीत होकर मेरी शरण में आ जाए और मद-मोह, छल-कपट आदि त्याग दे तो मैं उसे बहुत शीघ्र साधु के समान कर देता हूँ। वह माता-पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, घर, मित्र और परिवार इन

सबके प्रति ममता का, आसक्ति का त्याग कर और उन सभी सांसारिक संबंधों की एक डोरी बनाकर यदि उस डोरी से अपने मन को मेरे चरणों में बाँध लेता है, और यदि उसके मन में हर्ष, शोक, भय नहीं है तो ऐसा सज्जन मेरे हृदय में वैसे ही बसता है, जैसे लोभी के हृदय में धन बसता है। तुम सरीखे संत ही मुझे प्रिय हैं। मैं किसी और के निहोरे से (कृतज्ञतावश) देह धारण नहीं करता।''

इस प्रकार प्रभु की शरणागति पाकर विभीषण जी निर्भय हो गए। उनके शोक मिट गए। न सिर्फ उन्हें आत्मोपलब्धि हुई, वरन वे प्रभुकृपा से सोने की लंका के अधिपति भी बन गए। वे लंकेश बन गए। प्रभु की शरण में तो लाभ-ही-लाभ है, हानि की तो कोई गुंजाइश ही नहीं है। युगऋषि श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने ठीक ही कहा है— ''ईश्वर के साथ साझेदारी घाटे का नहीं नफे का सौदा है।'' ईश्वर की शरणागति हमारे लिए कितनी कल्याणकारी है, मंगलकारी है, इसकी पुष्टि महर्षि पतंजलि योगसूत्र 2-45 में करते हुए कहते हैं—

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।

ईश्वर प्रणिधान से समाधि की सिद्धि होती है। महर्षि पतंजलि के कहने का आशय यह है कि ईश्वर की शरणागति से योग साधन में आने वाले विघ्नों का नाश होकर शीघ्र ही समाधि निष्पन्न हो जाती है; क्योंकि ईश्वर पर निर्भर रहने वाला साधक तो केवल तत्परता से साधन करता रहता है, उसे साधन के परिणाम की चिंता नहीं रहती। उसके साधन में आने वाले विघ्नों को दूर करने का और साधन की सिद्धि का भार ईश्वर के जिम्मे पड़ जाता है, अत: साधन का अनायास और शीघ्र पूर्ण होना स्वाभाविक ही है।

संत, ऋषि, मुनि, योगी आदि ईश्वरीय आलोक से आलोकित होते हैं। इसलिए ईश्वर के अतिरिक्त ऐसे बुद्धपुरुषों की शरणागति भी हमारे लिए ईश्वर की शरणागति की तरह ही कल्याणकारी है, मंगलकारी है; क्योंकि वे भी तो ईश्वर रूप ही हैं, ब्रह्म रूप ही हैं। तभी तो ऐसे बुद्धपुरुषों की शरण में जाकर हम निर्भय हो जाते हैं। हम आह्लादित हो जाते हैं, आनंदित हो जाते हैं, परमानंदित हो जाते हैं, ब्रह्मानंदित हो जाते हैं। कुछ ऐसा ही आश्वासन प्रज्ञागीत की प्रस्तुत पंक्तियों में हमें युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने दिया है—

तुम न घबराओ न आँसू ही बहाओ तुम।
और कोई हो न हो, पर मैं तुम्हारा हूँ॥
मैं खुशी के गीत गा-गाकर सुनाऊँगा।
गीत गा-गाकर सुनाऊँगा॥
मानता हूँ ठोकरें तुमने सदा खाईं,
जिंदगी के दाँव में हारें सदा पाईं।
बिजलियाँ दु:ख की निराशा की सदा टूटीं,
मन गगन पर वेदना की बदलियाँ छाईं।
पोंछ दूँगा मैं तुम्हारे अश्रु गीतों से,
तुम सरीखे बेसहारों का सहारा हूँ।
मैं तुम्हारे घाव धो मरहम लगाऊँगा,
मैं विजय के गीत गा-गाकर सुनाऊँगा॥
खा गई इनसानियत को भूख यह भूखी,
स्नेह ममता को गई पी प्यास यह सूखी।
जानवर भी पेट का साधन जुटाते हैं,
जिंदगी का हक नहीं हैं रोटियाँ रूखीं।
और कुछ माँगो, हँसी माँगो, खुशी माँगो,
खो गए हो दे रहा तुमको इशारा हूँ।
आज जीने की कला तुमको सिखाऊँगा,
जिंदगी के गीत गा-गाकर सुनाऊँगा॥

अस्तु हमारे लिए ईश्वर शरणागति से श्रेष्ठ दूसरा कोई साधन नहीं। इसमें सुख है, आनंद-ही-आनंद है। पाना-ही-पाना है, खोना कुछ भी नहीं है। ❑

उत वा यः सहस्य प्रविद्वान्मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः॥

—ऋग्वेद 1/147/5

अर्थात शक्ति के पुत्र हे अग्निदेव! जो मनुष्य छल-कपटपूर्वक हमें कष्ट पहुँचाना चाहते हैं, उनसे हम उपासकों को बचाइए। हे स्तुत्य अग्निदेव! हमें दुष्कर्मरूपी पापों की दु:खाग्नि से जलने से बचाइए।

गाँवों का समावेशी विकास हो सुनिश्चित

भारत गाँवप्रधान देश है, यहाँ 72 फीसदी आबादी गाँवों में रहती है, जिनमें अधिकांश कृषि पर निर्भर हैं। अत: जब राष्ट्र के विकास की बात आती है, तो गाँव एवं कृषि का विकास अहम हो जाता है। सदियों से गाँव भारतीय जीवन की धुरी रहे हैं। वस्तुत: भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। देश का अस्तित्व सात लाख गाँवों के कारण है, जिनके आधार पर शहरी जीवन पोषण पाता है और संस्कृति की सनातन अंतर्धारा काल के तमाम थपेड़े खाते हुए भी सतत प्रवाहमान रहती है।

भारत में ग्राम सदैव स्वयं में आत्मनिर्भर इकाई रहे हैं, जिनका मुख्य आधार थे—कृषि, पशुपालन एवं परंपरागत उद्योग और इसकी अपनी एक अंतर्निहित सामाजिक व्यवस्था। गाँव स्थानीय संसाधनों का सदुपयोग एवं नियोजन करते हुए आत्मनिर्भर एवं स्वावलंबी थे। अँगरेजों ने इस स्वावलंबी तंत्र में सेंध लगाकर इसे अपने नियंत्रण में लेने का काम किया। तमाम तरह के कानून और नीतियों को बनाया तथा देशी प्रतिनिधियों को अपना नुमाइंदा बनाकर गाँवों पर अपना शिकंजा कसा और पारंपरिक समाज तंत्र को अपने शासन तंत्र पर निर्भर होने के लिए विवश किया।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय शासन आया, लेकिन नीतियाँ पूर्व की भाँति यथावत् बनी रहीं, जो गाँव के विकास के बजाय शहरीकरण पर केंद्रित रहीं, जिसका दुष्परिणाम आज सामने है। आजादी के सात दशकों के बाद शहर व गाँव के बीच विषमता की खाई बहुत चौड़ी हो चुकी है। परिणामस्वरूप गाँव सिकुड़ रहे हैं और शहर आबादी के दबाव तले दबे हुए हैं।

आजादी के बाद गाँवों के पारंपरिक लघु उद्योगों को पोषण देने के बजाय बड़े उद्योगों को प्रोत्साहित किया गया। मशीनीकरण एवं रासायनिक खादों के बल पर हरित क्रांति की लहर अवश्य उठी, लेकिन इसका लाभ भी एक वर्ग विशेष ने उठाया। परिणामस्वरूप संपन्न और अधिक संपन्न होते गए और गरीब और अधिक गरीब होते चले गए।

लोकजीवन में श्रम की गरिमा, स्वावलंबन एवं स्वाभिमान जैसी परंपरागत विशेषताएँ क्षीण होती गईं। आज मानसिकता ऐसी है कि कोई श्रम नहीं करना चाहता, पढ़ा लिखा युवक श्रम को हेय दृष्टि से देखता है, सरकारी बाबू की नौकरी में ही शान समझता है। गाँव के सरल, सादे एवं मेहनतकश जीवन के बजाय वह शहरों के पराश्रयी एवं घुटन भरे जीवन को अपनी नियति मान बैठता है।

विकास के नाम पर बड़े उद्योगों के चलन के बाद उदारीकरण का दौर आया, जिसमें बहुराष्ट्रीय कंपनियों को प्रवेश मिला। इनके चलते गाँवों के बचे-खुचे पारंपरिक कौशल आधारित उद्योग हाशिए पर चले गए और इनमें से आज अधिकांश अप्रासंगिक हो चुके हैं। इनके साथ गाँवों का परस्पर सहयोग पर आधारित स्वावलंबी तंत्र ध्वस्त हो गया। ऐसे में रोजगार की तलाश में गाँवों से शहरों की ओर पलायन बढ़ा है। कई प्रांतों की स्थिति ऐसी विकट है कि वहाँ गाँवों में बड़े-बुजुर्ग और महिलाएँ ही शेष बचे हैं, पढ़ी-लिखी पीढ़ी शहरों में बस गई है और वापस आने में संकोच व दुविधा की स्थिति में है। उजड़ते ग्रामीण जीवन की ऐसी स्थिति में देश के विकास को कैसे संतुलित एवं संतोषजनक कहा जा सकता है।

कृषि में अधिक उत्पादन के नाम पर रसायनों से लेकर कीटनाशक दवाइयों एवं जीन संवर्द्धित बीजों का उपयोग बहुतायत में होने के चलते जल, जमीन, वायु और आकाश सब प्रदूषण की चपेट में हैं। इनके साथ फल, सब्जी एवं खाद्य पदार्थ भी विषाक्त हो चले हैं, जिनके भयंकर दुष्परिणाम भुगतने के लिए एक बड़ी आबादी अभिशप्त है। प्रकृति के अंधाधुंध दोहन-शोषण के कारण इसका संतुलन डगमगा रहा है। भोगवाद की आँधी में व्यक्ति पहले से अधिक लोभी हो गया है। व्यक्ति प्रकृति एवं संस्कृति की जड़ों से दूर हो रहा है और बाहरी विकास के बावजूद अंदर से खिन्न, विपन्न एवं दरिद्र अवस्था में है। ऐसे में विकास के नाम पर जो हासिल हुआ है, उसको देखते हुए लगता है कि हमने पाया कम, खोया अधिक है।

सारी स्थिति को देखते हुए स्पष्ट होता है कि आवश्यकता समावेशी विकास की है, जिससे गाँवों व शहरों का समग्र विकास सुनिश्चित हो सके। विकास का लाभ एक वर्ग या व्यक्ति विशेष के बजाय सभी तक पहुँचे। अमीर एवं बड़े किसान के साथ छोटे-सीमांत किसान सभी इससे लाभान्वित हों।

आर्थिक विषमता की खाई पटे। भौतिक विकास प्रकृति की कीमत पर न हो। विकास प्रकृति-पर्यावरण को भी साथ लेकर चले। गाँव स्वावलंबी बनें, जिनमें उपलब्ध स्थानीय संसाधनों का श्रेष्ठतम उपयोग हो तथा सभी आत्मनिर्भर बनें।

समय आ गया है कि हम ग्रामीण जीवन के महत्त्व को समझें, पुनः गाँवों की ओर लौट चलें। प्रकृति की स्नेहमयी छाया में वापस टिकाऊ विकास का नया अध्याय लिखें। इसके दोहन-शोषण के बजाय, अपनी श्रद्धा के साथ इसको संवर्द्धित-पुष्ट करें। प्राकृतिक जीवन के सुरक्षा कवच को तहस-नहस करने के बजाय, इसको संरक्षित करें और इसके साथ सामंजस्य बिठाते हुए विकास की सुखद बयार बहाएँ।

विषाक्त कृषि एवं जीवनशैली को तिलांजलि दें। जैविक खेती, ऑर्गेनिक फार्मिंग, प्राकृतिक कृषि का महत्त्व समझें व इसे अपनाएँ। संयम, सादगी, त्याग, सेवा भरे जीवनमूल्यों को आत्मसात् करें तथा कृषि के साथ ऋषि संस्कृति को अपनाकर समावेशी विकास में अपना योगदान दें।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने गाँव, कृषि एवं विकास से जुड़ी भवितव्यता को भाँपते हुए दूरदर्शी समाधान सूत्र एवं ऋषि चिंतन प्रस्तुत किया था। उनके शब्दों में, आने वाले समय में शहरों का मोटापा हलका होगा और दुबले गाँव, कस्बे बनकर मजबूत दृष्टिगोचर होने लगेंगे। सरकारी बैंक अभी तो बड़े उद्योगों के लिए बड़ी सुविधाएँ देते हैं, पर अगले दिनों यह भी संभव न होगा। आने वाले दिनों में कुटीर उद्योग ही प्रमुख होंगे। ये गाँवों-कस्बों में चलेंगे और सहकारी समिति स्तर पर उनका ढाँचा खड़ा होगा। भविष्य गाँवों का है। आओ हम गाँवों की ओर वापस लौट चलें।

युगनिर्माण-अभियान के सप्तसूत्री आंदोलन के अंतर्गत समग्र विकास का खाका तय किया गया है। साधना, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वावलंबन, पर्यावरण, नारी जागरण और व्यसन मुक्ति एवं कुरीति उन्मूलन जैसे कार्यक्रमों को अपने गाँव व क्षेत्रों की आवश्यकता के अनुरूप क्रमवार क्रियान्वित करते हुए समग्र विकास की दिशा में कदम बढ़ाया जा सकता है। निस्संदेह रूप में साधना अन्य छह आंदोलनों की धुरी है, जिसे वैयक्तिक एवं सामूहिक स्तर पर लागू किया जा सकता है। इसी के आधार पर अन्य आंदोलनों की सफलता निर्भर करती है। ये सातों आंदोलन समग्र ग्राम्य विकास को सुनिश्चित करने वाले उपक्रम हैं। गाँवों में इन आंदोलनों को अपने स्तर पर लागू करते हुए समावेशी विकास की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाए जा सकते हैं। ❑

रामतनु लाहिड़ी कलकत्ता के प्रसिद्ध समाज सुधारक थे। एक बार वे अपने मित्र के साथ कहीं जा रहे थे कि उनकी दृष्टि सामने से आते एक व्यक्ति पर पड़ी। अभी तक उस व्यक्ति ने लाहिड़ी जी को नहीं देखा था। वे तुरंत एक पेड़ की आड़ में छिप गए और उस व्यक्ति के गुजर जाने के बाद ही वहाँ से निकले। उनके मित्र को उनका यह व्यवहार कुछ विचित्र लगा। उसने उनसे ऐसा करने का कारण पूछा तो वे बोले— "उन सज्जन ने मुझसे कुछ रुपयों का उधार लिया हुआ है, हर बार मेरे सामने पड़ने पर वे अनेक प्रकार के झूठे बहाने बनाते हैं, जिससे मेरा मन बड़ा दुःखी होता है। धर्म सिर्फ स्वयं द्वारा किए गए सत्कर्मों को नहीं कहते, वरन दूसरे के अनीतिपूर्ण आचरण को न होने देना भी धार्मिकता की सच्ची पहचान है। उनका उत्तर सुन उनके मित्र बड़े प्रभावित हुए।"

भक्त शिरोमणि शबरी

रामचरितमानस में शबरी की भगवद्भक्ति का बड़ा ही मनोहारी वर्णन आता है। कमलसदृश नेत्र और विशाल भुजा वाले, सिर पर जटाओं का मुकुट और हृदय में वनमाला धारण किए हुए सुंदर-साँवले भगवान श्रीराम अपने अनुज लक्ष्मण के साथ सीता की खोज में वन में इधर-उधर भ्रमण कर रहे हैं। भ्रमण करते हुए वे शबरी के आश्रम के निकट पहुँचते हैं तो मानसकार यह जिज्ञासा व्यक्त करते हैं कि ये शबरी कौन हैं? वे जंगल में क्यों रह रही हैं? अपना गृह त्यागकर वे भला जंगल में क्या कर रही हैं?

शबरी भील जनजाति में जन्मीं एक वृद्ध महिला थीं। जब वे युवती थीं तो उनके माता-पिता उनके विवाह के अवसर पर भोज देने के लिए परंपरानुसार बड़ी संख्या में पशुओं को वध करने के लिए लाए थे। उस गाँव में न जाने कितनी शादियों में पशुओं का वध होता रहा होगा, पर किसी युवती ने इसका प्रतिकार नहीं किया। पर वध के लिए लाए गए निरीह पशुओं को देखकर शबरी की आँखें भर आईं, हृदय द्रवित हो उठा। उनके मन में भारी ग्लानि और पीड़ा हुई। भक्तिमती भोली-भाली शबरी सोचने लगीं कि भला यह कैसा विवाह है, जिसमें इतने पशुओं का वध होगा? ऐसे विवाह से तो विवाह न करना ही अच्छा है।

उन निरीह पशुओं की ऐसी नियति को देखकर शबरी के मन में सांसारिक जीवन से वैराग्य उत्पन्न हो गया। वे एक जंगल में चली गईं, जहाँ वे भगवद्भक्ति कर सकें। उस जंगल में कई संतों के आश्रम थे। भगवद्भक्ति के लिए वे संतों का आशीर्वाद पाना चाहती थीं, पर वे प्रत्यक्ष रूप से संतों के पास जाएँ तो जाएँ कैसे; क्योंकि वे भील जनजाति की जो ठहरीं। भगवद्भक्ति में तल्लीन, पावन, पुनीत जीवन जीने वाले संतों के सामने स्वयं को अधम मानने वाली शबरी जाएँ भी तो कैसे? वे संतों के पास प्रत्यक्ष रूप से जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाईं। इसलिए वे रोज चुपके से ऋषियों के आश्रम में जातीं और वहाँ साफ-सफाई करके लौट आतीं।

ऋषिगण जब अपने शिष्यों के साथ आश्रम से बाहर चले जाते तो शबरी चुपके-चुपके आश्रम की सफाई कर देतीं, संत और शिष्यों के लिए जल भर देतीं और अन्य सेवाएँ कर दिया करतीं। जब ऋषिगण वापस आते तो अपने आश्रम की साफ-सफाई व अन्य सेवाओं को देखकर अचंभित हो जाते। भला यह सब रोज कौन कर जाता है।

एक दिन एक शिष्य ने छिपकर यह पता लगा ही लिया कि उनके आश्रम की साफ-सफाई व अन्य सेवा शबरी नाम की भील जाति की एक महिला चुपके-चुपके कर जाती है। उस शिष्य ने अपने गुरु से कहा—"गुरुदेव! भील जाति की यह महिला, आश्रम के अंदर आकर यहाँ की पवित्रता भंग कर जाती है।" पर ऋषि तो ऋषि ठहरे। करुणा की प्रतिमूर्ति मतंग ऋषि ने शबरी की निश्छलता, निष्कपटता, समर्पण व भक्ति को देखकर उसे आश्रम के पास ही कुटिया में रहकर भगवद्भक्ति करने की आज्ञा प्रदान कर दी।

ऋषिवर ने उसे राम मंत्र से दीक्षित किया और उसकी सेवा व सच्ची गुरुभक्ति व भगवद्भक्ति को देखकर कहा—"पुत्री! तब मैं सशरीर तो नहीं रहूँगा, पर तुम एक दिन भगवान श्रीराम को अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देख सकोगी। तुम अपनी भगवद्भक्ति में कभी भी कोई व्यवधान मत आने देना। पल-पल भगवान का स्मरण करते रहना। प्रभु बड़े दयालु हैं। वे तुम पर एक दिन अपनी कृपा अवश्य बरसाएँगे।" अपने गुरु के मुख से ऐसी वाणी सुनकर, ऐसा आश्वासन सुनकर शबरी की आँखें प्रेमाश्रुओं से भर आईं। वे गुरु के चरणों में गिर पड़ीं।

एक दिन ऋषिवर संसार से विदा हो गए। पर शबरी अपने गुरु के आदेश का पल-पल निर्वाह करती हुई, अविराम भक्ति करती रहीं, भगवान के आने की बाट जोहती रहीं। भगवान तो सर्वज्ञ हैं, अंतर्यामी हैं, सर्वव्यापी हैं, फिर भला शबरी की निश्छल भक्ति उनसे कैसे छिपी रह सकती थी? प्रभु तो परम दयालु हैं। अपने भक्त की निश्छल भक्ति व

सच्चे प्रेम को देखकर वे द्रवित अवश्य ही होते हैं, भक्त पर अपनी कृपा अवश्य ही बरसाते हैं।

शबरी रोज जंगल से बेर लाया करतीं, उन्हें चखा करतीं और जो बेर मीठे होते उन्हें अलग अपने प्रभु को खिलाने को रख लेतीं। जिस मार्ग से ऋषिवर आते-जाते थे, उसे साफ करके वे निष्कंटक बनाया करती थीं। वे भगवान राम की प्रतिपल प्रतीक्षा करती थीं और स्वयं को यह भरोसा देती थीं कि प्रभु उन्हें दर्शन अवश्य देंगे।

मानसकार ने उनके इन भावों को कुछ इस तरह से व्यक्त किया है—वे सभी दिशाओं में, सभी पहरों में सचेत हो, देखती हैं कि कहीं मेरे प्रभु आ तो नहीं गए और उनके आने पर भी मैं कहीं सोई तो न रही। कहीं मेरे प्रभु मार्ग भटक तो नहीं गए। उनके हृदय में उमड़ता-घुमड़ता प्रेम आँखों से अश्रु बन बह रहा है। वे सोच रही हैं कि कहीं मुझे अधम जानकर प्रभु ने आने का विचार बदल तो नहीं लिया।

यह सोचकर वे और भी रोती जाती हैं। उन आँसुओं ने मानों शबरी के कोटि-कोटि जन्मों के कर्म संस्कारों को धो डाला। उनका मन पवित्र हो गया। उन्होंने कुटिया से झाँककर देखा तो देखती रह गईं। देखा मेरे प्रभु तो सचमुच मेरी कुटिया की ओर आ रहे हैं। इस परम दिव्य प्रसंग को मानसकार ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

सरसिज लोचन बाहु बिसाला।
जटा मुकुट सिर उर बनमाला॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई।
सबरी परी चरन लपटाई॥
प्रेम मगन मुख बचन न आवा।
पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥
सादर जल लै चरन पखारे।
पुनि सुंदर आसन बैठारे॥
कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि॥
पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी।
प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी॥
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी।
अधम जाति मैं जड़मति भारी॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता।
मानउँ एक भगति कर नाता॥
नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं।
सावधान सुनु धरु मन माहीं॥

अर्थात कमलसदृश नेत्र और विशाल भुजा वाले, सिर पर जटाओं का मुकुट और हृदय पर वनमाला धारण किए हुए साँवले और गोरे भाइयों (राम —लक्ष्मण) के चरणों में शबरी लिपट पड़ीं। वे प्रेम में मग्न हो गईं और उनके मुख से कोई शब्द नहीं निकला। फिर उन्होंने जल लेकर आदरपूर्वक दोनों भाइयों के चरण धोए और फिर उन्हें सुंदर आसनों पर बैठाया। उन्होंने अत्यंत रसीले और स्वादिष्ट कंद-मूल और फल लाकर प्रभु श्रीराम जी को दिए। प्रभु ने बार-बार प्रशंसा करके उन्हें प्रेमसहित खाया। फिर वे हाथ जोड़कर आगे खड़ी हो गईं।

प्रभु को देखकर उनका प्रेम अत्यंत बढ़ गया। उन्होंने कहा—"मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ? मैं नीच जाति की और अत्यंत मूढ़बुद्धि हूँ।" इस पर भगवान श्रीराम ने कहा—"हे मातंगी! मेरी बात सुन! मैं तो केवल एक भक्ति का ही संबंध मानता हूँ। मैं तुम्हारी सच्ची भक्ति से अति प्रसन्न हूँ। मैं तुझसे अब अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ। तू सावधान होकर सुन और मन में धारण कर।" इस प्रकार प्रभु ने शबरी जी की सच्ची भक्ति के कारण उन्हें नवधा भक्ति प्रदान की। शबरी जी की भक्ति सफल हुई।

भक्त और भगवान के मिलन के इस मधुर प्रसंग में साधकों व भक्तों के लिए कई आध्यात्मिक प्रेरणाएँ व संकेत हैं। सर्वप्रथम तो शबरी बालिका होते हुए भी पशुवध जैसी क्रूर, अमानवीय व अधार्मिक परंपरा का विरोध करती हैं, उसका प्रतिकार करती हैं। परंपराओं की तुलना में वे अपने विवेक को अधिक महत्त्व देती हैं। अनीति का विरोध न करना भी अनीति को बढ़ावा देने के ही समान है।

आज समाज में मृतक भोज, दहेज प्रथा, बेटे-बेटी में फरक, खरचीली शादियाँ आदि कई बुराइयाँ हैं, जिनका विरोध होना ही चाहिए। पर्यावरण-संरक्षण के लिए काम किया जाना चाहिए। साधना और धर्म के मार्ग पर चलने वाले साधकों के लिए यह अभीष्ट भी है। शबरी में भाव-संवेदना भरी हुई है, इसलिए वे पशुवध की परंपरा से दुःखी हैं, द्रवित हैं।

शबरी में सेवा की भावना प्रबल है। उनमें श्रमशीलता भी है। वे चुपके-चुपके सेवा कर जाती हैं। इसका प्रतीकात्मक अर्थ यह है कि साधक को, भक्त को सेवा, श्रेय पाने की

आशा से नहीं, वरन स्वभावत: ही करना चाहिए। सेवा में कोई दिखावा, प्रदर्शन, मान-सम्मान पाने की भावना नहीं होनी चाहिए।

इसके साथ ही हमारे लिए यह भी प्रेरणा है कि हम जहाँ भी रहें, वहाँ साफ-सफाई, स्वच्छता-पवित्रता का वातावरण बनाए रखें। सेवा में अहंकार की भावना नहीं होनी चाहिए। अपने घर पर या गुरु आश्रमों में या समाज में हमें निश्छल, निष्कपट भाव से सेवा करनी ही चाहिए, जैसा कि शबरी ने किया।

सेवा हमारे लिए सौभाग्य का द्वार खोल देती है। सेवा के कारण ही शबरी के जीवन में सौभाग्य का द्वार खुला। उनकी सेवा-भक्ति से प्रभावित होकर ही मतंग ऋषि ने उन्हें अपनी शिष्या बनाया एवं उसी सेवा-भक्ति ने उन्हें भगवान के दर्शन कराए। शबरी ने शिष्या बनने की अपनी पात्रता को साबित किया।

शबरी को अपने गुरु के वचनों पर अटूट विश्वास है। यदि गुरु ने कहा है कि आने वाले समय में ऐसा होगा तो होगा ही। इसमें संदेह की रत्ती भर भी गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। यदि उन्होंने कहा है कि अविराम भक्ति करने पर एक दिन भगवान आएँगे तो अवश्य ही आएँगे। हमें भी ऐसा सोचना चाहिए कि यदि हमारे गुरु ने कहा है कि युग-परिवर्तन होना अवश्यंभावी है तो ऐसा होगा ही।

शबरी ने अपने गुरु के बचनों का अक्षरश: पालन किया और उसी के बल पर वे प्रभु की असीम कृपा प्राप्त कर सकीं और प्रभु के दर्शन कर सकीं। जिस मार्ग से प्रभु के आने की संभावना थी, उस मार्ग को शबरी ने अपने आँचल से बुहारकर निष्कंटक बनाया। इसका अर्थ यह ही है कि हमें दूसरों के मार्ग को निष्कंटक बनाना चाहिए, उस पर काँटे नहीं बिछाना चाहिए। इससे स्वयं का जीवन भी निष्कंटक हो जाता है। यह एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रेरणा हमें शबरी के जीवन से मिलती है।

शबरी प्रभु के लिए मीठे बेर रखती हैं। इसका अर्थ यही है कि हमारे हर कर्म इतने मधुर हों, दिव्य हों जिससे कि हम उन्हें प्रभु को समर्पित कर सकें। प्रभु को अपवित्र, अमधुर कर्म, अपवित्र चिंतन, चरित्र, व्यवहार प्रिय नहीं। न ही ऐसे कर्म प्रभु को अर्पित किए जा सकते हैं।

इसका दूसरा पहलू यह भी है कि प्रभु भक्त की प्रेम-भावना पर ही रीझते हैं। प्रभु को हम प्रेम-भावना से अपने अंत:करण में प्रकट कर सकते हैं। प्रभु प्रेम के भूखे हैं, पदार्थ के नहीं। वे भक्त की प्रेम-भावना को देखते हैं। इसलिए प्रभु ने जूठे बेरों को नहीं, बल्कि शबरी की प्रेम-भावना को देखा। उनके द्वारा अर्पित सामग्री को नहीं, पदार्थ को नहीं, बल्कि उनके निश्छल, निष्कपट मन को देखा, प्रेम को देखा।

शबरी हमेशा जागरूक रहा करती थीं और वे हर पल ईश्वर के प्रति सचेतन थीं। उन्होंने कभी भी उस अवस्था को नहीं त्यागा। इसी तरह हम भी संसार में रहते हुए जो भी कर्त्तव्य कर्म करें, जो भी कर्म करें उन्हें सदा ईश्वर के प्रति सचेतन होते हुए ही करें। शबरी को गुरु के द्वारा दिए गए मंत्र पर पूर्ण विश्वास था। वे उसे नित्य श्रद्धा-भाव से जपा करती थीं। वे किसी दूसरे मंत्र की, दूसरे गुरु की या किसी अन्य रास्ते की तलाश में नहीं भटकती थीं। उन्हें मालूम था कि उनके गुरु ब्रह्मज्ञानी हैं। हमें भी अपने गुरु के हर वाक्य को ब्रह्मवाक्य मानना चाहिए।

हमारे द्वारा सदा गुरु की आज्ञा का पालन होना ही चाहिए। गुरु की आज्ञा को साक्षात् नारायण की आज्ञा समझना चाहिए। गुरु एवं आराध्य के प्रति गहरी श्रद्धा-निष्ठा होनी चाहिए; क्योंकि जो श्रद्धा हर दूसरे दिन गिरगिट की तरह रंग बदलती हो, वह श्रद्धा, श्रद्धा तो कतई नहीं हो सकती। वह श्रद्धा या श्रद्धालु होने का भ्रम मात्र है, प्रपंच मात्र है। ऐसी श्रद्धा, अश्रद्धा से भी गई गुजरी है। जो श्रद्धा विपरीत-से-विपरीत, प्रतिकूल-से-प्रतिकूल और कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में भी अविचल बनी रहे, वही सच्ची श्रद्धा है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि शबरी की तरह हर सच्चे साधक को पूरी श्रद्धा-निष्ठा व ईमानदारी से अपने अंत:करण व मन की मलिनता पर झाड़ू लगाते हुए उसे सदा पवित्र व निर्मल बनाए रखना चाहिए। साथ ही अपनी साधना में नियमितता व निरंतरता बनी रहनी चाहिए, तभी हम शबरी की भाँति अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो सकते हैं। शबरी की भाँति हमें जीवन-व्यवहार में हमेशा ईश्वर की सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता का भान होना चाहिए, जिससे कि हम सर्वत्र ईश्वर की उपस्थिति की अनुभूति करते हुए हमेशा शुभ कर्म, पुण्य कर्म करते रहें और पाप कर्म, बुरे कर्म, अशुभ कर्म करने से बचे रहें। यदि हम ऐसा कर सके तो साधना में सफलता सुनिश्चित है और प्रभु की कृपा प्राप्त होना अवश्यंभावी है। ❑

अनिद्रा की समस्या व इसके सरल समाधान सूत्र

नींद शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी हुई एक रहस्यमयी प्रक्रिया है। यदि किसी कारणवश नींद पूरी न हो पाए या सही ढंग से नींद न आए तो पूरा दिन बरबाद-सा लगता है। सिर भारी रहता है, मन में चिड़चिड़ाहट रहती है, मस्तिष्क सही ढंग से एकाग्र नहीं हो पाता एवं कार्यक्षमता बुरी तरह से प्रभावित हो जाती है। रात को समय पर न सो पाना, रात को नींद का खुल जाना या रात भर जागते रहना जैसी समस्याओं के चलते व्यक्ति पूरी नींद नहीं ले पाता। इसके कारण दिन भर शरीर में थकान हावी रहती है और दैनिक कार्यों के बीच भी उनींदापन बना रहता है। ऐसे में अनिद्रा की समस्या का उपचार आवश्यक हो जाता है, जिसे जीवनशैली में कुछ सुधार के साथ पूरा किया जा सकता है।

औसतन एक व्यक्ति सात से आठ घंटे सोता है। जबकि कुछ लोग चार-पाँच घंटे सोकर भी तरोताजा अनुभव करते हैं और कुछ के लिए दस घंटे की नींद भी कम पड़ जाती है। यह सब व्यक्ति के स्वास्थ्य, पेशे तथा बहुत कुछ आनुवंशिक आधार पर तय होता है, जिसके कारण कुछ लोग बहुत कम नींद से भी काम चला लेते हैं; जबकि दूसरों को इसके लिए पर्याप्त समय की आवश्यकता पड़ती है। फिर व्यक्ति की आयु भी नींद का निर्धारण करती है। छोटे बच्चे 12 से 15 घंटे सोते हैं; जबकि बुजुर्गों को नींद कम आती है।

नींद को कई कारक प्रभावित करते हैं, यथा — आहार-विहार-व्यायाम, रोग-दवाइयाँ, शराब-नशा, तनाव-चिंता आदि। इनमें सुधार के साथ नींद की समस्या को हल किया जा सकता है, लेकिन यह भी ज्ञात हो कि नींद का तरीका धीरे-धीरे बदलता है। एक नए तरीके को स्थापित करने में कुछ सप्ताह लग सकते हैं। नींद की समस्या को ठीक करने के लिए शारीरिक, मानसिक और जीवनशैली के स्तर पर कार्य किया जा सकता है। यदि नींद की समस्या किन्हीं शारीरिक बीमारियों से जुड़ी हो तो इनका उपचार चिकित्सक से मिलकर किया जा सकता है।

रात को पेशाब आने की समस्या नींद को प्रभावित करती है, विशेष कर बड़े-बुजुर्ग एवं गर्भवती महिलाएँ इससे अधिक परेशान रहते हैं। इसके लिए बिस्तर पर जाने से दो घंटे पहले तक अपना रात्रि का जलपान कर लें। बिस्तर में जाने से पहले पेशाब कर लें। शराब व अन्य प्रकार के नशीले पेय से बचें; क्योंकि ये नींद की समस्या को और गंभीर बनाते हैं। पहले तो ये नींद का एहसास दिलाते हैं, लेकिन फिर इनका नशा उतरते ही नींद खुल जाती है। इसके साथ चाय, कॉफी और तंबाकू जैसे उत्तेजक पदार्थ नींद को बिगाड़ने का काम करते हैं। इनके बजाय प्रज्ञापेय जैसे पेय ले सकते हैं। कमरे में सो रहे अन्य व्यक्ति के खर्राटे भी नींद में एक बड़ी बाधा बनते हैं, जो कई कारणों से हो सकते हैं। चिकित्सक से मिलकर इनका उपचार किया जा सकता है।

अनिद्रा के उपचार में दिनचर्या का व्यवस्थित होना अहम होता है। सोने व जागने की दिनचर्या को ठीक कर हम इसका बहुत कुछ समाधान कर सकते हैं। सोने से डेढ़ घंटे पहले सारे दैनिक कार्यों को समेट लें। मन को हलका व शांत करने वाले कार्यों को करें, जैसे हलका-फुलका मधुर संगीत, स्वाध्याय-सत्संग, डायरी लेखन आदि। इनके साथ दिन भर का बोझ पीछे छोड़ दें। यदि कुछ पीने का मन हो तो सोने से पूर्व दूध, प्रज्ञापेय या जड़ी-बूटी का काढ़ा आदि ले सकते हैं। साथ ही दिन भर अपने विचारों पर भी ध्यान रखें। दिनचर्या ठीक करने के बावजूद यदि मन चिंता, अवसाद व उद्विग्नता के विचारों से ग्रस्त है, तो इनसे निपटें। मन को समझाएँ कि रात का समय सोने के लिए है, चिंता के लिए नहीं।

इस क्रम में अपने चिंतापूर्ण विचारों को कागज पर उतारें। इससे मन हलका होगा। इसके लिए साथ में एक नोटपेड या डायरी रखें। कुछ भी महत्त्वपूर्ण कार्य याद आता हो तो उसे नोट करते जाएँ। कई लोग रात को सोते समय समस्याओं पर विचार करने लग जाते हैं, जो नींद को प्रभावित करता है। अत: कोई भी आपसी गंभीर चर्चा सोने से डेढ़ घंटे पहले निपटा लें।

यदि ये सब करने के बाद भी नींद नहीं आ रही हो तो अपने श्वास पर ध्यान केंद्रित करें। अंदर और बाहर आते-

जाते श्वास को अनुभव करें। यह अभ्यास व्यक्ति को वर्तमान में स्थिर होने में सहायक होता है। कुछ मिनट तक स्वाभाविक एवं गहरे श्वास के साथ ऐसा करने पर मन शांत होने लगता है।

यदि आधी रात को जागने की समस्या से परेशान हों तो ऐसे में मन को समझाएँ कि यह चिंता का समय नहीं है। रात को जागने पर इसके शारीरिक एवं भौतिक कारण को देखें कि कहीं आप भूखे-प्यासे तो नहीं हैं या अधिक ठंड या गरमी के कारण तो परेशान नहीं हो रहे हैं या कमरे में हवा या रोशनी की कोई समस्या तो नहीं है।

अच्छी नींद के लिए बिस्तर एवं कमरे का आरामदायक होना सहायक रहता है, इस पर ध्यान दें। कहने की आवश्यकता नहीं कि रात का भोजन हलका रखें। रात को सोने से 1-2 घंटा पूर्व स्मार्ट फोन को बंद कर दें। शाम को सोने से बचें तथा सोने से 5-6 घंटे पहले व्यायाम आदि से निपट लें। यदि सोने-जागने का समय नियत हो सके, तो यह नींद के संदर्भ में अति उत्तम रहता है।

नींद के चक्र को बदलने के लिए कुछ करें, जिससे नींद का गहन चक्र सक्रिय हो सके। इसके लिए कोई पुस्तक पढ़ सकते हैं, रसोई में जाकर पानी पी सकते हैं, फिर बिस्तर में जा सकते हैं जैसे कि पहली बार सो रहे हों। उठने पर विश्राम कर सकते हैं व अपने श्वास पर ध्यान कर सकते हैं। यदि ये सब काम न करें, तो कुछ हलका-फुलका व मनपसंद कार्य करें, जो सारी रात हैरान-परेशान होकर जागने से बेहतर रहता है। इसके साथ रात को दु:स्वप्न भी नींद में बिघ्न डालते हैं। दिन भर की परेशानियाँ तथा तनाव के बीच ये स्वाभाविक होते हैं। किसी बीमारी, दुर्घटना या संकट के कारण गहरे तनाव या विषाद की अवस्था में ये भयावह एवं तनावपूर्ण रूप ले सकते हैं।

हालाँकि ये समय के साथ खुद ही शांत हो जाते हैं, जब व्यक्ति घटनाओं से उबर जाता है। यदि ये बने रहें, तो किसी विश्वसनीय व्यक्ति के सामने इनकी चर्चा कर मन को हलका करें या इनकी कारक समस्याओं पर विचार करें। कुछ स्वप्न प्रतीकात्मक हो सकते हैं। इनके मूल में निहित भाव को समझें। अंतत: स्वप्न मात्र स्वप्न ही तो हैं, जिन्हें अधिक गंभीरता से लेने की आवश्यकता नहीं।

इस तरह नींद न आने पर इसके मूल में सक्रिय कारणों को खोजकर इनका समाधान किया जा सकता है। शारीरिक, मानसिक, जीवनचर्या तथा व्यावहारिक स्तर पर छोटे-छोटे कदमों के साथ उचित उपचार करते हुए अच्छी नींद को सुनिश्चित किया जा सकता है। ❑

अमरदास सिख संप्रदाय के तृतीय गुरु थे। उन्होंने अपने अनुयायियों को सामूहिक लंगर में भोजन कराने की प्रथा का सूत्रपात किया, ताकि मनुष्य-मनुष्य के बीच ऊँच-नीच के भेद को मिटाया जा सके। एक बार एक अधिकारी ने आकर सेवकों के माध्यम से अमरदास जी को सूचना भिजवाई कि शहंशाह अकबर आपके दर्शन करना चाहते हैं, भोजन भी यहीं करेंगे।

अमरदास जी बोले—"यहाँ सभी समान हैं। यदि शहंशाह सामान्य नागरिक की तरह आकर सबके साथ बैठकर लंगर भोजन करने को तैयार हों तो आ सकते हैं।" राजा ने वैसा ही किया, तब कहीं गुरु दर्शन प्राप्त हुए और उनके सत्संग का लाभ मिला। अहंकार हटने पर ही श्रेष्ठता का सान्निध्य प्राप्त हो सकना संभव हो पाता है।

कर्मयोग

कर्मयोग की अत्यंत सुंदर, व्यापक और अति सूक्ष्म व्याख्या भगवान श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में की है। कर्म बाँधता है, अविराम शृंखला है कर्म की। जो काम हम करते हैं, उनका परिणाम भोगने के लिए हमें विवश होना पड़ता है। काल हमारे सामने परिणाम को रखता है, परिणाम शुभ हो या अशुभ हो, लेकिन हमें उसे भोगने के लिए, उसे स्वीकारने के लिए विवश होना पड़ता है।

एक कर्म और फिर उसका परिणाम, फिर दूसरा कर्म और उसका परिणाम, इस तरह कर्म की शृंखला सदा जारी रहती है। जीवात्मा शरीर रहते कर्म से मुक्त नहीं हो सकती। शरीर रहे या शरीर न रहे, कर्म के परिणाम से मुक्त होना कठिन होता है और इसीलिए जन्म-जन्मांतरों तक यह शृंखला चलती रहती है। हमारे जीवन में ऐसा कोई क्षण नहीं, जब हम कर्म न कर रहे हों। हर क्षण हमसे किसी-न-किसी तरह का कर्म होता ही है तो प्रश्न उठता है क्या कर्मबंधन से कभी मुक्त नहीं हुआ जा सकता?

भगवान श्रीकृष्ण इसका उपाय बताते हैं—कर्मयोग। कर्मयोग का आचरण—**स्वल्पमपयस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्**। कहते हैं कि थोड़ा-सा इस धर्म का आचरण यानी कर्मयोग का आचरण हमें जीवन-मरण के महान भय से त्राण दे देता है। भगवान श्रीकृष्ण इसका विशद उपदेश देते हैं कि शरीर है तो कर्म होंगे ही, लेकिन कर्मों को इस विधि से किया जाए, इस ढंग से किया जाए, इस तरीके से किया जाए, इस सलीके से किया जाए कि कर्म करते हुए भी हम कर्मबंधन में न बँधें। कहते हैं कि भगवद्गीता में जो कर्मयोग की बात कही गई है, अनासक्ति की जो बात कही गई है, उसका ईशावास्योपनिषद् में भी उल्लेख मिलता है—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥

अर्थात यह सारा जगत् ईश्वरीय सत्ता से, ईश्वरीय चेतना से परिव्याप्त है। ईश्वर ने इसे गढ़ा है, इस जगत् में रहो, जीवन का सुख-दुःख उपभोग करो, लेकिन **'तेन त्यक्तेन'** यानी त्यागपूर्वक, अनासक्तिपूर्वक। **गृधः** यानी गिद्ध एक पक्षी होता है, लालची होता है, वह सड़े हुए मुरदे के मांस के प्रति भी आसक्त हो जाता है। **मा गृधः कस्य स्विद् धनम्,** वो आसक्ति, वो लालच, वो गिद्धपन, वो गिद्धदृष्टि, वो हमारे भीतर न आए; क्योंकि एक दिन यह जीवन समाप्त हो जाएगा। यह जीवन शाश्वत नहीं, बल्कि नश्वर है।

कर्मयोग की जो मूल बातें हैं, जो मूल तत्त्व हैं, वो क्या हैं? ऐसा क्या है जो कहें कि यह आचरण हमारा कर्मयोग का है? भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कर्मयोग के कई आयाम दिए हैं। कर्मयोग का पहला आयाम है कि आसक्ति न रहे अर्थात आसक्ति का त्याग। **असङ्गोऽस्त्वकर्मणि** असंग भाव से यानी असंग होकर कर्म करो, कर्म में आसक्ति न रहे, आसक्ति नहीं होगी तो कर्म नहीं बाँधेगा। श्रीरामकृष्ण परमहंस कहते थे कि हाथों से कटहल काटना है तो सरसों का कड़ुआ तेल लगाकर कटहल काटो। तेल लगाकर कटहल काटोगे तो काटते समय यह हाथों में चिपकेगा नहीं अन्यथा बिना तेल के यह चिपक जाएगा। अनासक्ति भी उस तेल की तरह ही है, जिससे कर्म चिपकेगा नहीं, इसलिए पहला सूत्र है—आसक्ति का त्याग। हमारे जीवन में सारी विसंगतियाँ, सारे दुष्परिणाम आसक्ति के हैं, कर्म के नहीं हैं।

गोस्वामी जी ने श्रीरामचरितमानस में यह कहा है—**मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥** मोह यानी आसक्ति सभी व्याधियों की, सभी झंझटों की, सभी उलझनों की जड़ है, बीज है, उससे बहुत सारी परेशानियाँ, बहुत सारे शूल, बहुत सारे कंटक अपने आप उपजते हैं और जीवन में कष्ट मिलते रहते हैं। आसक्ति कहीं पर भी हो, बंधन कहीं पर भी हो और किसी रूप में भी हो—हम कष्ट पाते हैं, अनेक शुभ आचरण करते हुए भी। महाभारत में उल्लेख आता है पितामह भीष्म का। भीष्म बँधते चले गए प्रतिज्ञाओं से, बँधते चले गए वचनों की डोर से और कहीं सूक्ष्म में अपने वंश की, अपने परिवार की आसक्ति से बँधते चले गए, मेरे परिवार का कुछ अनर्थ न हो, मेरे परिवार का कुछ अनिष्ट न हो, ऐसा सोचते-सोचते भीष्म पितामह बँधते चले गए। भीष्म पितामह ने विवाह

नहीं किया, राज्य का सुख भी नहीं भोगा, राजा भी नहीं बने, सर्वप्रथम अधिकार उन्हीं का था, लेकिन वंश की आसक्ति, पिता को दिए हुए वचन के कारण भीष्म पितामह का पूरा जीवन कंटकाकीर्ण रहा और अंत उनका शरशय्या में हुआ, बाणों की शय्या, बाणों की सेज में। जीवन में आसक्ति हमें अनेक संकटों में डालती है। हम जितना गहरे में आसक्त होते हैं, उतना गहरे में बँधते हैं, कर्मबंधनों से। आसक्ति न हो, तो बंधन हमें बाँधते नहीं हैं। कर्म के परिणाम हमें प्रताड़ित नहीं करते, हमें पीड़ा नहीं देते।

कर्मयोग का दूसरा आयाम—भगवद्गीता में जिस कर्मयोग की बात कही गई है, उसके स्वरूप को समझाते हुए भगवान कहते हैं—**रागद्वेषवियुक्तैस्तु** अर्थात राग-द्वेष से थोड़ा अलग रहो। राग यानी हम किसी के प्रति अच्छा भाव रखते हैं, हम किसी के प्रति अच्छा सोचते हैं, उसे अपनाना चाहते हैं, उसे अपना बनाना चाहते हैं। किसी को अपना बनाने की बात, किसी से अपनत्व जोड़ने की बात राग है। राग हमें बाँधता है व्यक्ति से, घटनाक्रम से, परिस्थिति से और द्वेष यानी हम उससे दूर जाना चाहते हैं, विरक्ति, उसके प्रति बैर पालते हैं मन में। इस तरह प्रीति और बैर जीवन में राग और द्वेष हैं।

भगवान कहते हैं कि ये दोनों ही बाँधते हैं। यदि आप राग से बँधे हैं, तो भी उससे बँधे हैं जन्मों तक और द्वेष से बँधे हैं, तब भी उससे बँधे हैं जन्मों तक। ऐसा नहीं है कि राग अच्छा है, द्वेष बुरा है या द्वेष अच्छा है राग बुरा है। अगर हमने किसी से बैर पाल लिया तो उस बैर को निभाने के लिए हम घूमते रहेंगे उसके पीछे-पीछे या वो हमारे पीछे-पीछे घूमेगा, शरीर छूटेगा, जन्म पर जन्म जाएँगे, लेकिन द्वेष का बंधन, राग का बंधन नहीं जाएगा; क्योंकि राग और द्वेष जीवात्मा को कर्मबंधन में बाँधते हैं। भगवान कहते हैं गीता में कि राग-द्वेष से मुक्त हो करके, राग-द्वेष को क्षीण करके कर्म करो, राग-द्वेष को क्षीण करके जो कर्म किया जाएगा वो कर्मयोग है।

कर्मयोग का तीसरा आयाम—भगवान कहते हैं कि कर्त्तापन का त्याग करो; क्योंकि क्रिया का परिणाम नहीं होता, कर्म का परिणाम होता है। जब वहाँ पर मैं आपका खड़ा होता है जब मैं उपस्थित होता है, अहं उपस्थित होता है तो अहं कहता है कि मैंने किया, मैंने ऐसा किया, मैं ऐसा करूँगा। यह जो कर्त्तापन है, कर्मयोग में इसी का त्याग करना होता है। जब कर्त्ता है तो कर्म का परिणाम जरूर होगा। अहं का संकल्प है तो परिणाम जरूर होगा, लेकिन कर्त्तापन का भाव न रहे।

यह अजीब-सी बात है, कुछ विचित्र-सी बात है कि कर्म हम कर रहे हैं और हम कर्त्ता नहीं हैं। जब हमारे द्वारा कर्म हो रहा है, तो सच्चाई यही है कि मैं कर रहा हूँ। भगवान कहते हैं कि यह सच्चाई इतनी आसान नहीं है। इतनी सीमित सच्चाई नहीं है, आप देख नहीं पा रहे हो कि मैं कौन है और कर्म कहाँ से आ रहे हैं? कहते हैं कि जीवात्मा, अंतरात्मा, आत्मा कभी भी कर्म में लिप्त नहीं होती और न उससे कोई कर्म घटित होता है।

कर्मों का सारा खेल तो प्रकृति के तीन गुण सत्, रज, तम और चित्त की वृत्तियाँ, चित्त में उठने वाली लहरें—इन्हीं के संयोग से कर्म घटित होते हैं। प्रकृति के तीन गुणों के अनुरूप परिस्थितियाँ होती हैं, कहीं सत् की सघनता है, तो कहीं रज की तो कहीं तम की। हमारे चित्त में भी प्रकृति के ये तीन गुण उपस्थित रहते हैं और फिर इनके कारण हमारे अंदर भाव उठते हैं, वृत्ति उठती है, लहर उठती है और उस लहर से प्रकृति के तीन गुण और वृत्तियों के संयोग से हम कुछ करते हैं, चित्त कुछ करता है, लेकिन आत्मा कुछ नहीं करती। चित्त में भाव जगता है, चित्त में लहर उठती है, चित्त में इच्छा जगती है, अभिरुचि जगती है, कल्पना उठती है, कर्म के लिए हम प्रेरित होते हैं।

भगवान कहते हैं कि **गुणाः गुणेषु वर्तन्ते**—अर्थात गुण-ही-गुण में बरत रहे हैं, आप समझते हैं कि आप कर्म कर रहे हैं। आप कौन हैं? क्या आप इंद्रियाँ हैं, क्या आप शरीर हैं? क्या आप चित्त हैं, मन हैं? क्या आप बुद्धि, अहंकार हैं या फिर आप ईश्वर के परम अंश आत्मा हैं। यदि आपको अपने स्वरूप का सही भान होगा, सही ज्ञान होगा तो आप महसूस करेंगे, अनुभव करेंगे कि कर्म आपके द्वारा नहीं हो रहे हैं।

कर्म घटित हो रहे हैं प्रकृति में ही। कोई भी कर्म जीवात्मा को, कोई भी कर्म अंतरात्मा को स्पर्श नहीं करता, न कर्म, न उसका परिणाम। सारी-सीमा रेखा प्रकृति में ही है। प्रकृति में ही कर्म घटित होता है। कर्मों के परिणाम केवल चित्त में संकलित, संचित होते हैं। कर्म का कोई परिणाम आत्मा को बाँधता नहीं है। इसलिए कर्त्तापन का त्याग कर्मयोग में जरूरी है। कर्त्तापन एक भ्रम है, एक भ्रांति है, इस भ्रांति का त्याग कर दो, फिर कर्म के परिणाम तुम्हें नहीं बाँधेंगे। कर्त्तापन

का परिणाम, कर्त्तापन का त्याग हमें वास्तविक रूप से कर्मयोगी बनाता है।

कर्मयोग का चौथा आयाम—समता का भाव है। भगवान गीता में योग को परिभाषित करते हैं कि **समत्वं योग उच्यते**। समता का उलटा शब्द है विषमता। जब हमारे अंदर समता का भाव होता है, तब हम सबको एक रीति से देखते हैं और जब विषमता होती है तो किसी के प्रति हमारा सद्भाव होता है और किसी के प्रति हमारा दुर्भाव होता है, हम आग्रही होते हैं। सद्भाव और दुर्भाव होता है राग और द्वेष के कारण। जिसके प्रति हम आसक्त होते हैं, जिसके प्रति हम राग से भरे होते हैं, आसक्ति से पूर्ण होते हैं, उसके प्रति हमारा सद्भाव होता है और जिसके प्रति हम द्वेष से पूर्ण होते हैं, उसके प्रति हमारा दुर्भाव होता है। राग-द्वेष हमारे अंदर अपनेपन और परायेपन का भाव पैदा करते हैं। हमारे लिए कौन अपना है और कौन पराया? हमारा चित्त समता का अनुभव नहीं कर पाता, राग-द्वेष जाए तो समता का अनुभव होता है और समता का अनुभव होने लगे, तो हमें सर्वत्र अपनी अंतरात्मा व्याप्त दिखने लगती है।

भगवान कहते हैं कि **यो मां पश्यति सर्वत्र**.... जो मुझे सर्वत्र देखता है, कहीं पर भी मैं छिपा हुआ नहीं हूँ। सर्वत्र स्पष्ट हूँ, प्रकट हूँ। जो सर्वत्र मुझे देखता है, सर्वत्र अपनी अंतरात्मा को देखता है तो फिर कैसा राग और कैसा द्वेष? फिर न कोई राग है और न कोई द्वेष है। न कोई अपना है और न कोई पराया है। एक संस्कार जगता है तो उसके अंदर अपनापन जाग जाता है और दूसरा जाग जाता है तो उसके अंदर पराएपन का भाव आ जाता है। काल और कर्म घटित होते हैं, घटनाएँ घट जाती हैं। कैकेयी राम को बहुत प्यार करती थी, एक संस्कार जगा, एक कर्म जगा, कैकेयी माध्यम बनी और राम को वनवास दे दिया, वो कर्म पूरा हुआ, घटना पूरी हुई, कैकेयी के विचार खुल गए, अंधकार छँट गया, उसे अपने किए पर बड़ा पछतावा हुआ, समत्वं—राग और द्वेष से भिन्न है, न राग न द्वेष। समता में स्थित होकर जो कर्म किए जाते हैं, जो कार्य किया जाता है वो कर्मयोग होता है, वो बाँधता नहीं है। यह कर्मयोग का आचरण है।

कर्मयोग का पाँचवाँ आयाम—भगवान कर्मयोग को पुनः परिभाषित करते हैं, **योगः कर्मसु कौशलम्**। कर्म को कुशलता से करना, यह एक स्किल है, तकनीक है, टेक्नोलॉजी है। प्रायः कर्म को हम कुशलतापूर्वक नहीं करते, अकुशल होकर करते हैं। जैसे—कर्म में जब कुशलता होती है तो हमारे तन और मन को कर्म में पूर्ण नियोजित होना चाहिए, संपूर्ण रूप से। कर्म में स्थिर होना चाहिए, एकाग्र होना चाहिए। ऐसा होता नहीं है। हम बार-बार फलाकांक्षी होते हैं, बार-बार सपने बुनते हैं।

हम अगर परीक्षा की तैयारी करते हैं तो उम्मीद करते हैं, आशा करते हैं कि जब इस परीक्षा का परिणाम आएगा, तो हम इस क्लास में प्रथम आ जाएँगे तो क्या-क्या घटना घटेगी, कितनी खुशी मिलेगी, घरवाले खुश होंगे, नौकरी करेंगे, फिर पैसा कमाएँगे, फिर बड़ा धन होगा, दौलत होगी, बहुत सारे सपने जुड़ जाते हैं उस कर्म के साथ, फल मिलता नहीं है, मिलने में संदेह भी है कि मिलेगा कि नहीं मिलेगा, लेकिन उसकी फल की आकांक्षा हमें तीव्रता से बाँधती है। फल की आकांक्षा के बँधने के कारण मन जो है असंगठित होता है, मन बिखरता है, मन बँटता है, विभाजित होता है।

जितना मनोयोग होना चाहिए कर्म में, जितनी संपूर्णता के साथ कर्म होना चाहिए, उतनी संपूर्णता के साथ नहीं होता है। कई बार हम सोचते हैं कि भगवान बार-बार कहते हैं—**मा फलेषु कदाचन**, फल की इच्छा मत करो, तो इस बारे में सोचते हैं कि जब फल की इच्छा नहीं करेंगे तो कर्म हम करेंगे ही क्यों? सामान्य क्रम में हम कर्म करते हैं—लोभ से और भय से, हमारे अंदर लोभ होता है कि कुछ मिलेगा या हम भयभीत होते हैं कि यह हम नहीं करेंगे तो सब कुछ बिगड़ जाएगा। योगी लोभ और भय के आधीन नहीं होता, न वह लोभ करता है और न भयातुर होता है। वो तो बस, पूरे मन से अपना काम करता है, पूरी तल्लीनता से अपना काम करता है।

प्रश्न उठता है कि अगर हमारे मन में आसक्ति नहीं है तो हम काम क्यों करेंगे? हम राग से भर करके अच्छे काम करते हैं और द्वेष से भर करके बुरे काम करते हैं। कुछ अच्छा मिलेगा, इस पाने की इच्छा से अच्छे काम करते हैं और हमें किसी से बदला लेना है, किसी को मारना है, किसी को नुकसान पहुँचाना है, ऐसा सोचकर बुरा काम करते हैं, राग-द्वेष।

भगवान कहते हैं कि यह बात ठीक नहीं है। इसके कारण ऐसे कर्म होते हैं, जो आपको जन्मों तक बाँधेंगे, जन्मांतरों

तक बाँधेंगे। बंधन में आप बँधते चले जाएँगे। **कर्मसु कौशलम्**—कर्म में कुशलता सीखो, कर्म तो हम करें, लेकिन बँधें नहीं। कर्म तो हम करें, लेकिन बंधन न हो। यह जो कर्म की कुशलता है, इससे कर्म करते हुए हम मुक्त रहते हैं—**मुक्तसङ्गः समाचर।** सम आचरण करते हुए मुक्त, असंग हो करके, अनासक्त हो करके कर्मबंधन से मुक्त होना, यही कर्म की कुशलता है।

कर्मयोग का छठा आयाम—भगवान कर्मयोग का एक और तत्त्व बताते हैं, सभी कर्मों को भगवान में अर्पण करें। लोग अपने प्रियजनों के लिए उपहार लाते हैं, उनके लिए कर्म करते हैं, लेकिन भगवान यहाँ कहते हैं कि **सर्वप्रिय,** सबसे प्रिय मैं ही हूँ। भगवान से अधिक प्रिय और कोई नहीं है। इसलिए जो भी कर्म किया जाए, वो तू मेरे लिए अर्पण कर दे, **यत्करोषि**—जो कुछ करता है, यहाँ तक कि भगवान कहते हैं, **यदश्नासि**—जो तू खाता है, जो तू हवन करता है, **यत्ददासि**—जो तू दान देता है, **यत्तपस्यसि**—जो तू तप करता है, प्रत्येक कर्म प्रातः से लेकर सायं तक, सब कुछ मुझे अर्पण कर दे।

संसार में जो हमारे संबंध बने हैं, वो चित्त तक सीमित हैं, संस्कार के संबंध हैं, कर्म के संबंध हैं। चेतना के संबंध नहीं हैं, चेतनता के संबंध नहीं हैं। ये संबंध ऐसे हैं कि एक संस्कार उभरा और एक संबंध बना और उस संस्कार के साथ जो कर्म जुड़ा है, वहाँ तक संस्कार की डोर भी चलती है और कर्म की डोर भी चलती है। वो संस्कार टूटा और कर्म टूटा और संबंध भी टूटा। उस संबंध की एक सीमा, एक कालावधि है।

हम बहुत प्रगाढ़ता से किसी से प्रेम करते हैं, लेकिन वो प्रेम संस्कारजन्य है। प्रेम के टूट जाने पर वो व्यक्ति अलग हो जाता है, भिन्न हो जाता है। उसका स्थान बदल जाता है, देश बदल जाता है। वो व्यक्ति हमारे जीवन से चला जाता है, दूर चला जाता है। इसीलिए मिलना-बिछड़ना जीवन का धर्म है, प्रत्येक संबंध में हम मिलते हैं और बिछड़ते भी हैं। एक स्थान में एक विशेष स्थान में, एक विशेष समय में कोई व्यक्ति हमारे जीवन में आता है। बड़ा अच्छा लगता है यानी शुभ संस्कार जगा। एक विशेष स्थान में, एक विशेष समय में कोई अन्य व्यक्ति हमारे जीवन में आता है, बड़ा बुरा लगता है, अशुभ संस्कार जगा।

शुभ संस्कार के जगने पर ऐसा लगता है कि जैसे संपूर्ण जीवन हमने उसके साथ जी लिया और अशुभ संस्कार जगने पर ऐसा लगता है कि संपूर्ण जीवन की दुर्घटनाएँ उसके साथ घटित हो गईं। ये संस्कार के स्वरूप पर और कर्म के स्वरूप पर निर्भर करता है। फिर उसके बाद वो स्थान भी बदल जाता है और व्यक्ति भी बदल जाते हैं और संबंध भी बदल जाते हैं।

बचपन से आज तक अगर हम निरीक्षण करें, अपना परीक्षण करें तो पारिवारिक संबंधों के अतिरिक्त अनेक संबंध बने और संबंध टूटे भी, लेकिन एक संबंध ऐसा है, जो कभी परिवर्तित नहीं होता, अपरिवर्तनीय है—आज और कल, किसी भी क्षण में, किसी भी मुहूर्त में उसमें परिवर्तन नहीं आएगा, वो संबंध है आत्मा-परमात्मा का संबंध।

गोस्वामी जी कहते हैं—**ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।** ईश्वर और जीव का संबंध अविनाशी है, चेतन है, निर्मल है और सुख की खान है, सुख-ही-सुख है। इसीलिए वो परम प्रिय है, सर्वप्रिय है, भले ही हम उसकी ओर से आँखें मूँदे हुए हैं। भले ही उसकी ओर हम उन्मुख न हों, भले ही उसका हमने त्याग कर रखा हो, लेकिन उसने हमारा कभी भी त्याग नहीं किया। इसलिए भगवान कृष्ण कहते हैं—सभी कर्मों को भगवान में अर्पित करो, ईश्वर में अर्पित करो, **तत्कुरुष्व मदर्पणम्** *(9/27)*।

कर्मयोग का सातवाँ आयाम—भगवान कहते हैं—मान लो कि हम कर्मयोग नहीं कर पाए, कर्म करते हुए हमारे चिंतन में परमेश्वर नहीं रह पाए तो? हम भगवान को कर्म का फल अर्पित कर दें, कर्म कर ही रहे हैं हम, और इसका फल भगवान पर छोड़ दें, भगवान के लिए छोड़ दें। फिर कर्मफल की हमें चिंता नहीं होगी। भगवान ने 12 वें अध्याय के 12 वें श्लोक में एक बात कही है—**श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते। ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥** अर्थात भगवान कहते हैं—जो काम हम कर रहे हैं, अनगढ़ कर रहे हैं, उस अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है, लेकिन ज्ञान यदि केवल विचार है, हम उसके मर्म को नहीं जानते, ज्ञान को आचरण में नहीं लाते, तो ऐसा ज्ञान निरर्थक है, इस ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यान से भी श्रेष्ठ है कर्मफल का त्याग, क्योंकि त्याग से तत्काल शांति प्राप्त होती है।

इस तरह कर्मयोग के बहुत सारे आयाम हैं, इनमें से किसी एक को भी अगर हम अपने जीवन में अपना लें, तो हमारे जीवन में कर्मयोग सध जाएगा। ❑

चेतना की शिखर यात्रा – 225

गायत्री योग का प्रवर्तन

विगत अंक में आपने पढ़ा कि रामायण पर प्रवचन करने वाले वानप्रस्थी तैयार करने की पूज्यवर की योजना के पूर्वार्द्ध में उन्हीं की प्रेरणा से संबंधित संदर्भ जुटाने के कार्य में लगे साधक को पूज्य गुरुदेव की कृपादृष्टि के फलस्वरूप अनेकानेक विलक्षण एवं दिव्य अनुभूतियाँ हुईं। पूज्यवर द्वारा निर्देशित इस कार्य को संपन्न करते हुए साधक को अपनी दैनिक उपासना के दौरान मिली सिद्धाश्रम की झलक को अंतर्यामी पूज्य गुरुदेव ने अपनी भावी योजना का ही अंश बताया व उस साधक को युगानुकूल सिद्धाश्रम में हो रहे सूक्ष्म परिवर्तनों एवं उसकी महिमा से भी अवगत कराया। मार्गदर्शक सत्ता के संरक्षण में आत्मशरीर से सिद्धाश्रम की यात्रा के लिए तैयार उन साधक को यात्रा के मध्य कुछ नियमों के अनुपालन किए जाने की बात पूज्यवर ने उनसे कही व तत्क्षण ही अपने साथ उन्हें किसी अज्ञात दिशा की ओर लेकर आगे बढ़ने लगे। सिद्धाश्रम की यात्रा साधक के लिए अत्यंत रोमांचकारी होने के साथ ही कुतूहल से पूर्ण थी, किंतु अपने शिष्य के मन की प्रत्येक दशा से परिचित पूज्य गुरुदेव समय-समय पर उसे यथायोग्य मार्गदर्शन देते जा रहे थे। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण.....

निर्बाध अस्तित्व

साधक की भावधारा में विराम लगा। गुरुदेव के साथ एक आश्रम में प्रवेश हो रहा था। चल कर आए थे या आकाश मार्ग से उतरे थे, कुछ कहना कठिन है। साधक ने सिर्फ इतना ही सुना कि ध्यानावस्था में इन्हीं दिव्य पुरुष के दर्शन किए थे। गुरुदेव कह रहे थे। उन दिव्य पुरुष की ओर दृष्टि गई तो पाया कि सुबह पाँच-साढ़े पाँच बजे इन्हें ही गंगा के तट पर देखा था। साथ में दो कुमार भी थे। आश्रम में वे कहीं दिखाई नहीं दिए। साधक ने उन दिव्य पुरुषों के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। परिचय जानने की जरूरत नहीं थी। समझ लिया था यह दिव्य आत्मा कोई और नहीं, स्वयं विश्वामित्र हैं। आदि उपास्य गायत्री मंत्र के द्रष्टा महर्षि विश्वामित्र। उन्हें देखते ही मन में कई जिज्ञासाएँ उठने लगीं।

गायत्री मंत्र तो आदिशक्ति का मंत्र है। चारों वेद, एक सौ आठ उपनिषद्, छहों दर्शन, रामायण, महाभारत, पुराण आदि ग्रंथ इसी मंत्र का व्याख्या विस्तार हैं। फिर महर्षि विश्वामित्र इस मंत्र के द्रष्टा ऋषि कैसे हो सकते हैं? वे तो भगवान राम के समय त्रेतायुग में थे। जिज्ञासा का वेग जोर पकड़े और साधक उस वेग को अनुभव करते हुए थामने की चेष्टा करे इससे पहले ही महर्षि ने कहा—"क्यों नहीं हो सकते। रामायण के समय में त्रेतायुग में होने के हजारों वर्ष बाद अब इस समय में भी हुआ जा सकता है तो इस युग के हजारों-लाखों वर्ष पहले क्यों नहीं हुआ जा सकता?"

ऋषि ने समाधान के साथ साधक से प्रश्न भी कर लिया था। उस प्रश्न ने साधक के मन में उठी ही नहीं, उठ सकने वाली जिज्ञासाओं का भी निराकरण कर दिया। फिर ऋषि ने आश्रम के भीतर निहारा। उनके दृष्टि-निक्षेप से ही चारों दिशाओं में सामगान गूँजने लगा। सैकड़ों ब्रह्मचारियों और उपाध्यायों, आचार्यों ने एक स्वर में वेदपाठ आरंभ कर दिया। साधक ने उन स्वरों के स्रोत को देखने कि लिए आस-पास देखा तो पाया कि दूर-दूर तक ऋत्विजगण बैठे हैं।

निर्धूम जलती ज्वालाओं में आहुतियाँ देते हुए उन होताओं के मुखमंडल पर तेज चमक रहा था। यज्ञकुंड में समर्पित की जा रही दिव्य औषधियों की गंध से वातावरण सुरभित हो रहा था। साधक का मन पुलकित हो उठा।

कुछ क्षण पहले जैसे नीरव, विजन और वीरान वातावरण में पहुँचने की प्रतीति हुई थी, वह बदलने लगी थी। सर्वथा अपरिचित, अज्ञात और कामनाओं से परे स्थान पर अनायास पहुँच जाने जैसी स्तब्धता अनुभव होती है, वैसा ही शून्य इस तपोभूमि में आने पर लगा था। अब साधक की मन:स्थिति धीरे-धीरे सहज होने लगी थी और व्यवस्था में लगी तप:पूत विभूतियों को देखकर रोमांच हो रहा था। विस्मय-विमुग्ध होकर मन में भाव आ रहे थे कि इस दिव्यलोक में आने के लिए पता नहीं कितने जन्मों तक प्रतीक्षा करनी पड़ती होगी।

गुरुदेव ने साधक को अपने साथ चलने का संकेत किया। अभिवादन के लिए प्रस्तुत हुए महर्षि ने आगे कदम बढ़ाया। उनके साथ गुरुदेव भी और पीछे- पीछे साधक। मार्ग में चलते हुए अन्य ऋषि-आत्माओं के दर्शन भी हुए। उन्होंने गुरुदेव को इसी संबोधन से पुकारा और प्रणाम किया। गुरुदेव ने अपने स्वभाव के अनुसार हाथ जोड़कर उनके अभिवादन का उत्तर दिया। महर्षि विश्वामित्र के साथ चलते हुए गुरुदेव और साधक एक पर्णकुटीर में पहुँचे। कुटीर समुचित क्षेत्र में फैला हुआ था, न ज्यादा बड़ा और न ही छोटा। आठ-दस व्यक्ति बैठकर विचार-विमर्श कर सकें, उतना स्थान कुटीर में था।

कुटीर में प्रवेश के बाद साधक ने देखा कि वहाँ तीन आसन बिछे हुए हैं। लगा कि आगंतुकों के लिए पहले से व्यवस्था थी। सिद्ध क्षेत्र में पहले से विद्यमान महर्षि ने गुरुदेव से अपना आसन ग्रहण करने के लिए कहा और साधक के लिए भी संकेत किया। दोनों के अपने आसन पर बैठ जाने के बाद वे भी सामने बैठ गए। सिद्धाश्रम की गतिविधियों की संक्षिप्त चर्चा के बाद उनके और गुरुदेव के बीच परामर्श का क्रम आरंभ हुआ।

महर्षि विश्वामित्र ने गुरुदेव से उनकी लौकिक गतिविधियों और उपलब्धियों की संक्षिप्त चर्चा करते हुए कहा कि गायत्री-उपासना का व्यापक प्रचार हो गया है, लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। लाखों लोग पच्चीस वर्ष पहले प्रतिपादित, प्रवर्तित उपासना-विधि का अभ्यास कर रहे हैं। वह विधि लोकप्रिय तो हुई है, पर सार्वजनीन नहीं बन पाई है। उसे सार्वजनीन बनाने के लिए विशेष प्रयास करना है।

दूसरे सनातन धर्म के अनुयायी संध्यावंदन और गायत्री-उपासना की अनिवार्यता भूल से गए हैं। किसी समय तीन दिन तक संध्यावंदन नहीं करने पर वैदिक धर्म या सनातन धर्म के अनुयायी व्रात्य संज्ञक हो जाते थे। उन्हें अपने व्रत-नियमों और नित्य, नैमित्तिक कार्यों से पतित हुआ मान लिया जाता था। सहज-स्वाभाविक स्थिति प्राप्त करने के लिए प्रायश्चित करना होता था और छूटी हुई उपासना पूरी करनी होती थी। अब उस तरह का प्रायश्चित तो दूर रहा, संध्या गायत्री-उपासना की जरूरत तक नहीं समझी जाती।

सनातन धर्म के अनुयायी जब तक संध्या गायत्री को अपनी दिनचर्या और जीवनचर्या का अंश नहीं बना लेते, तब तक वे अपने आप को सिद्ध नहीं कर सकते। वेद, शास्त्रों और भारतीय भू-भाग में उद्भूत विश्वासों, जीवनमूल्यों को मानने वाले प्रत्येक व्यक्ति संध्या गायत्री को अपने जीवन में शामिल कर सकें, इसके लिए विशिष्ट प्रयोग किए जाने चाहिए।

सबके लिए उपयोगी साधन

उस कुटीर में हुई चर्चा में साधक ने भाग तो नहीं लिया सिर्फ उस चर्चा को सुन ही सका। वह इस संवाद का साक्षी बनने के सौभाग्य से ही गद्गद था। उस कक्ष में बाद में और भी ऋषि सत्ताओं का आगमन हुआ। उन्होंने भी चर्चा में हिस्सा लिया। उस विमर्श का सार यह था कि संध्या-उपासना या वंदन की पारंपरिक विधि बहुत लंबी और जटिल है। जप, ध्यान तक आते-आते उसमें पंद्रह से पच्चीस मिनट तक का समय लग जाता है। विधिविधान पूरा होने के बाद जप, ध्यान के लिए समय नहीं बचता।

सत्कर्म ही ईश्वर की सबसे बड़ी पूजा है।

मनुष्य समाज इन दिनों जितना जटिल और व्यस्त हो गया है, उसे देखते हुए एक-डेढ़ घंटे तक चलने वाली उपासना या संध्या प्रक्रिया हर किसी के लिए संभव नहीं है। ऐसी विधि निर्धारित की जानी चाहिए कि सभी के लिए संध्यावंदन या गायत्री मंत्र का जप, ध्यान और पूजनवंदन संभव हो सके। गुरुदेव और महर्षि की चर्चा में यह तथ्य भी रेखांकित हुआ कि संध्यावंदन की पारंपरिक विधियों में भी भारी अंतर है। प्रत्येक संप्रदाय या साधन परंपरा ने अलग-अलग विधियाँ तय कर लीं और अपने अनुयायियों को उन्हें ही अपनाने पर जोर दिया। इस विभेदीकरण से कोई भी विधि सार्वजनीन नहीं हो पाई और कालांतर में सभी लुप्तप्राय हो गईं। (क्रमशः)

तप-साधना के चमत्कारी परिणाम

मनुष्य जीवन तप के बिना अधूरा है। जीवन में पुण्य के बाद तप के क्षेत्र में प्रवेश होता है। जीवन की सच्ची और वास्तविक संपत्ति तप है। यों अनेक धार्मिक प्रक्रियाएँ आत्मकल्याण के लिए बनाई गई हैं और उन सबके अपने-अपने महत्त्व भी हैं, पर तप से ज्यादा महत्त्वपूर्ण कुछ भी नहीं है। कथा या सदुपदेश श्रवण से धार्मिक ज्ञान बढ़ता है, तीर्थयात्रा से पाप-वासनाओं का शमन होता है। यज्ञ से देवशक्तियों का पोषण होता है। पूजा-पाठ से भक्ति-भावना जाग्रत होती है। दान-पुण्य से भविष्यकालीन सुख-सौभाग्य का निर्माण होता है।

ये सब कार्य अपने-अपने महत्त्व के अनुसार फल देते हैं, परंतु एक कार्य ऐसा है जो इनमें से किसी से भी नहीं हो सकता है। तप से ही आत्मबल बढ़ता है। तप से ही ब्रह्मतेज प्रदीप्त होता है। तप से ही दिव्यशक्ति की उपलब्धि होती है। कोई मनुष्य अनेक वस्तुओं से सुसज्जित हो, उसे रेशमी कपड़े, स्वर्ण और रत्नों के बने आभूषण, पुष्प-मालाएँ, कस्तूरी-चंदन का सुवास, बढ़िया अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित करके बहुमूल्य पालकी में बैठाया जाए, परंतु उसके शरीर में शक्ति न हो, अशक्तता में वह जकड़ा हुआ हो तो वह सारी सुसज्जा किसी काम की नहीं रहेगी। इसके विपरीत यदि कोई हृष्ट-पुष्ट पहलवान चिथड़े भी पहने हो तो भी वह अच्छी स्थिति में होगा।

विविध प्रकार की धार्मिक क्रियाएँ एक प्रकार की सुसज्जा हैं, जिनसे जीवात्मा की शोभा बढ़ती है, परंतु वह शोभा तभी विशेष उपयोगी हो सकती है, जब उसके पीछे तपश्चर्या द्वारा संचित ब्रह्मशक्ति का भंडार हो। यदि वह कोश खाली है तो शोभावर्द्धक अन्य धार्मिक उपकरणों से कोई विशेष प्रयोजन सिद्ध न होगा। तप के जितने मार्ग हैं, उनमें गायत्री से बढ़कर सुलभ, सुनिश्चित एवं शीघ्र फलदायक और कोई मार्ग नहीं है। जितनी प्रकार की तपश्चर्याएँ विभिन्न रूपों में दिखाई पड़ती हैं, उन सबका उद्गम वस्तुतः गायत्री है।

जैसे बिना नींव जमाए कोई मकान खड़ा नहीं हो सकता और यदि खड़ा हो भी जाए तो ठहर नहीं सकता, उसी प्रकार बिना गायत्री के कोई तपस्या न तो पूर्ण होती है और न उसमें सफलता ही मिलती है। तप का मूल तत्त्व गायत्री में सन्निहित 'भर्ग' ही है।

चौरासी योगों में केवल गायत्री योग ही ऐसा है जिसे गृही, वैरागी सभी समान सुविधा से कर सकते हैं। इसके लिए गुरु की समीपता अनिवार्य नहीं, केवल संरक्षण से काम चल सकता है। भूल होने पर अधिक- से-अधिक इतनी हानि हो सकती है कि साधना निष्फल चली जाए। इसमें अन्य योगों की भाँति उलटे अनिष्ट का तो किसी प्रकार का कोई खतरा है ही नहीं। इसके द्वारा केवल भौतिक या केवल आध्यात्मिक ही नहीं, दोनों क्षेत्रों में समान लाभ होते हैं। साधक का जीवन सुखी बनता है और आत्मशांति भी निश्चित रूप से मिलती है।

प्राणिजगत में अगर किसी को कुछ प्राप्त हुआ है तो वह तप के कारण ही है। परिश्रम, कष्ट-सहिष्णुता, लगन, अध्यवसाय, एकाग्रता, निरंतरता की साधना, प्रयत्न-पुरुषार्थ के कारण ही लोगों को तरह-तरह की शक्तियाँ, योग्यताएँ, सामर्थ्य एवं संपदाएँ प्राप्त होती हैं। विद्यार्थी, व्यापारी, किसान, मजदूर, शिल्पी, संगीतज्ञ, चिकित्सक, नेता, साधु सभी वर्गों के लोग अपने-अपने कार्यक्षेत्र में, अपने-अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपने-अपने ढंग से तप करते हैं। जिसका तप जितना अधिक होता है, उसी अुनपात से उसे सफलता और संपन्नता मिलती है।

इतिहास बताता है कि पुरुषार्थप्रधान जातियाँ आगे बढ़ीं और ऊँची उठीं। इसके विपरीत आलसी, विलासी, भीरु, अकर्मण्य लोग व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से विनाश के गर्त में चले गए। जो वृक्ष ऋतु के प्रभावों को सहते हैं, वे दीर्घजीवी होते हैं और जिनकी सहनशक्ति निर्बल होती है, वे थोड़ी-सी सरदी-गरमी में नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार तपस्वी मनुष्य ही सफल होते देखे गए हैं। यह संसार तप के आधार पर बना है और तप के आधार पर ही उसकी जीवनचर्या एवं गतिशीलता निर्भर है। जड़-चेतन सभी पर दैवी विधान के नियम समान रूप से काम कर रहे हैं।

यह नियम आध्यात्मिक क्षेत्र में तो और भी व्यापक रूप से काम करता है। सृष्टि के आदिकाल से लेकर आज तक जितने भी आत्मशक्तिसंपन्न महापुरुष हुए हैं, उनकी महत्ता का एक ही कारण रहा है और वह है तप।

परमात्मा ने मनुष्य के शरीर और मन में अनेक सूक्ष्मशक्तियों के अद्‌भुत भंडार भर दिए हैं, उसके अणु-अणु में चमत्कारी दिव्यशक्तियों के कोश छिपे हुए हैं। यह कोश सुषुप्त अवस्था में पड़े रहते हैं। जिस प्रकार रात्रि में सब जीव-जंतु सोते रहते हैं और प्रातःकाल सूर्य की गरमी फैलते ही उन सबकी निद्रा खुल जाती है—उसी प्रकार तप की गरमी से वे सुषुप्त कोश जाग्रत होते हैं और मनुष्य उन ईश्वरप्रदत्त सूक्ष्मशक्तियों के बल से सुसज्जित हो जाता है, जो चिरकाल से उसके भीतर सोई हुई पड़ी थीं।

जैसे चिड़ियों की छाती की गरमी से अंडे पकते हैं, जैसे आम के कच्चे फलों को अनाज या भूसे में पाल लगाकर उन्हें पकाते हैं, वैसे ही तप की गरमी से गुप्त मनःशक्तियों का परिपाक होता है और सुपक्व मधुर परिणामों का आविर्भाव होता है। मनुष्य के सामने दो मार्ग हैं—तप या पत। ये दोनों एकदूसरे के उलटे हैं। तप का अर्थ है ऊपर उठना, पत का अर्थ है पतित होना। जो तप नहीं करता, उसे आध्यात्मिक पतन की ओर चलना पड़ेगा और जो आत्मिक पतन से बचना चाहता है, उसे तप के लिए अग्रसर होना पड़ेगा। दोनों में से एक ही मार्ग को चुना जा सकता है।

तप के संघर्ष से ही शक्ति उत्पन्न होती है। आध्यात्मिक जगत् में भी यह नियम समान रूप से लागू होता है। मनुष्य की पाशविक मनोवृत्तियाँ उसे नीचे की ओर, पतन की ओर ले जाती हैं। यदि उसे ऊँचा उठना है तो विशेष तत्परतापूर्वक प्रयत्न करना पड़ता है और उस विशिष्ट प्रयत्न को ही तप कहते हैं। पानी को कहीं भी छोड़िए वह नीचे की ओर ही बहेगा। उसे ऊपर की ओर ले जाना है तो विशेष प्रयत्न करना पड़ेगा। उसी प्रकार पतनोन्मुख मनोवृत्तियों को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए तप ही एकमात्र उपाय माना गया है। आत्मिक तप की श्रेष्ठता का महत्त्व और माहात्म्य सर्वोपरि है।

प्राचीनकाल में राजा से लेकर प्रजा तक तप की दिशा में उत्साहपूर्वक अग्रसर होते थे। राजा अपने बालकों को गुरुकुलों में तपस्वी जीवन बिताते हुए शिक्षा प्राप्त करने के लिए वनवासी ऋषियों के सुपुर्द कर देते थे। उसी का परिणाम है कि भारतमाता की कोख से सदैव महापुरुष उत्पन्न होते रहे हैं। आज उस महानता का परित्याग करके लोग भोग और लाभ के लिए निम्न स्तर पर उतर आए हैं। उसी का फल है कि वे व्यक्तिगत और सामूहिक शांति और उन्नति से रहित होते जा रहे हैं व चिंता, कलह, पाप एवं अशांति से सारा वातावरण प्रदूषित हो रहा है।

तप एक पुरुषार्थ है जिसके द्वारा सिद्धि, शांति, समृद्धि, स्वर्ग एवं मुक्ति जैसी सफलताएँ उपार्जित की जाती हैं और पाप, ताप, विघ्न, संकट, प्रारब्ध एवं आसुरी तत्त्वों को परास्त करके अपने पौरुष का विजय-घोष किया जाता है। कहते हैं कि ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है, जो अपनी सहायता आप करते हैं। बहादुर और उद्यमी को ही पुरस्कार मिलते हैं। ईश्वरीय कृपा और विशेष सहायता का अधिकारी वही व्यक्ति होता है, जो तपश्चर्या द्वारा अपनी प्रामाणिकता सिद्ध कर देता है।

अन्य धार्मिक क्रियाएँ करके पुण्य लाभ प्राप्त करने वाले व्यक्ति सीमित मर्यादा तक आत्मोन्नति कर लेते हैं, परंतु तपस्वी की शक्ति किसी भी सीमा या मर्यादा से बँधी हुई नहीं है। अष्टसिद्धि, नवनिधि उसके करतलगत हो सकती हैं। वह अपने को पूर्णता के अंतिम लक्ष्य तक पहुँचा सकता है और अपने तेज से अन्य अनेकों को प्रकाश एवं बल प्रदान कर सकता है। इस प्रकार हमें सतत सत्कर्म करते हुए तप के क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिए। तप के साथ विवेक की भी आवश्यकता है। विवेक से तप की ऊर्जा को दिशा मिलती है। विवेकशीलता को धारण करके तप करना एवं ऊर्जा को विश्व-कल्याण में लगाना ही साधक का यात्रापथ है। ❑

यथा सूर्योदये जाते न ज्ञायन्ते निशाचराः।
कथं ब्रह्मोदये जाते भ्रष्टा माया विमोहयेत्॥

जिस प्रकार सूर्योदय होने पर निशाचरों का अता-पता नहीं लगता, उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान हो जाने पर भ्रष्टाचार की माया कहीं नहीं टिकती।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार– 146

कैंसर पर सम्मोहन-चिकित्सा का प्रभाव

कैंसर एक ऐसी घातक बीमारी है, जिसके कारण लाखों लोग प्रतिवर्ष मर जाते हैं और जो जीवित रह भी जाते हैं, वे भी रोग से उत्पन्न पीड़ा और उपचार-प्रक्रिया के असहनीय दरद के कारण सतत मरणांतक कष्ट से गुजरते रहते हैं। यह बीमारी शरीर के साथ-साथ पूरे व्यक्तित्व को भारी क्षति पहुँचाती है। वैसे तो इसके उपचार की कई तकनीकें विकसित हो रही हैं, परंतु इन आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की तकनीकों द्वारा उपचार का लक्ष्य बीमारी अथवा इसके लक्षणों की रोक-थाम तक ही सीमित है।

ये तकनीकें समग्र व्यक्तित्व में होने वाले नुकसान अथवा परिवर्तन का उपचार नहीं कर पातीं। कैंसर रोगियों को शरीर के स्तर पर दरद आदि की समस्याएँ मात्र ही नहीं होतीं, वरन उन्हें मानसिक एवं भावनात्मक स्तर पर भी भारी आघात पहुँचता है। ऐसे में प्राय: रोगी चिंता, निराशा, आवेश, अवसाद, क्रोध, कुंठा, आत्महीनता जैसी विकृतियों का शिकार हो जाता है—जो उसके कैंसर से लड़ने की क्षमता को कमजोर करने और रोग को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

कैंसर के विषय में यह भी एक तथ्य है कि यह रोग होता तो शरीर के स्तर पर है तथा शरीर के किसी अंग विशेष में कोशिकाएँ अनियंत्रित रूप से वृद्धि करने लगती हैं और धीरे-धीरे अन्य अंग-अवयवों को प्रभावित कर अंतत: मृत्यु तक पहुँचा देती हैं, परंतु कैंसर के कारणों की खोज में यह एक दूसरा तथ्य है कि केवल असंयमित खान-पान व अन्य जैविक कारण ही नहीं अपितु तनाव, अवसाद, चिंता आदि नकारात्मक मनोभावों से भी कैंसर जैसी गंभीर बीमारी पैदा हो जाती है अर्थात मन की भी इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

आधुनिक चिकित्सा-प्रणालियाँ इस रोग के एक पक्ष अर्थात शरीर के स्तर पर उपचार व अन्य साधनायुक्त प्रक्रियाएँ तो अपनाती हैं, परंतु रोग के साथ-साथ रोगी के आंतरिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों एवं नुकसान के लिए कोई समाधान प्रस्तुत नहीं कर पाती हैं।

ऐसे में आवश्यकता है कि कैंसर के उपचार हेतु एक समग्र और संपूर्ण विधि की खोज की जाए, जो रोग की अवस्था एवं उपचार के दौरान उत्पन्न अन्य गंभीर समस्याओं से भी रोगी को मुक्ति दिला सके। कैंसर उपचार की वर्तमान पद्धतियों के दुष्प्रभाव और रोगी की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय के नैदानिक मनोविज्ञान विभाग के अंतर्गत एक महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन का कार्य विगत दिनों संपन्न किया गया है, जो कैंसर रोग में उपचार के दौरान व रोगजन्य समस्याओं के प्रबंधन की दिशा में एक सार्थक पहल कही जा सकती है।

यह शोधकार्य सन् 2017 में शोधार्थी विकास कुमार शर्मा द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या के विशेष संरक्षण तथा निर्देशन एवं डॉ० राजेश कुमार व डॉ० गौरव गुप्ता के सह-निर्देशन में पूरा किया गया है। इस शोध अध्ययन का विषय है—**'इफेक्ट ऑफ हिप्नोथेरेपी ऑन मेलिगनेंसी एंड एसोसिएटेड कन्डीशन्स'** अर्थात कैंसर और इससे संबंधित लक्षणों पर हिप्नोथेरेपी का प्रभाव।

वैज्ञानिक एवं प्रयोगात्मक विधि पर आधृत इस शोध अध्ययन को पूरा करने के लिए शोधार्थी द्वारा जवाहर लाल नेहरू कैंसर हॉस्पिटल एंड रिसर्च सेंटर (JNCHRC) भोपाल, मध्य प्रदेश से 57 कैंसर रोगियों को चयनित कर शोध प्रयोग में सम्मिलित किया गया। ये सभी मरीज अस्पताल में अपना उपचार करवा रहे थे और इनकी आयु 18 वर्ष से अधिक थी। शोधार्थी द्वारा प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व सभी चयनित मरीजों का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। इस प्रयोग परीक्षण में जो शोध उपकरण प्रयुक्त किए गए, वे हैं—

(i) पी० वर्नियर (1631) द्वारा निर्मित केलिपर उपकरण जिससे ट्यूमर के आकार का मापन किया जाता है। प्रयोग में इलेक्ट्रोनिक डिजिटल केलिपर उपकरण का प्रयोग किया गया।

(ii) मैक कैफ्रे एवं पजेरो (1999) द्वारा निर्मित न्यूमेरीकल रेटिंग स्केल (NRS) जिससे कैंसर रोगियों के दरद का मापन किया गया।

(iii) मैकनैर, लोर एवं ड्रॉपलमेन (1971) द्वारा निर्मित प्रोफाइल ऑफ मूड स्टेटस-स्टैंडर्ड (POMS)। इसके द्वारा मन:स्थिति को विचलित करने वाले कारणों का मापन किया गया, जैसे—तनाव, अवसाद, क्रोध, थकान, भ्रम एवं ताकत आदि।

(iv) इन्फ्रारेड थर्मामीटर (नान-कान्टैक्ट थर्मामीटर)। इस शोध में ओपरॉन TS-8, IR थर्मामीटर का उपयोग किया गया। इस उपकरण से कैंसर स्थान के तापमान को जाँचा गया।

परीक्षण के उपरांत शोधार्थी द्वारा चयनित रोगियों को लगभग 4 सप्ताह (15 सत्र प्रतिरोगी अर्थात चार सत्र प्रतिसप्ताह, प्रतिरोगी) लगभग एक घंटा हिप्नोथेरेपी प्रदान की गई। प्रयोग की अवधि पूर्ण होने पर पूर्व की भाँति शोध उपकरणों द्वारा रोगियों का पुन: परीक्षण किया गया। प्रथम परीक्षण एवं द्वितीय परीक्षण से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोधार्थी ने पाया कि सम्मोहन चिकित्सा का कैंसर रोगी के दरद, तनाव, अवसाद, थकान, भ्रम, ताकत, क्रोध आदि लक्षणों पर सार्थक एवं सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अत: कहा जा सकता है कि कैंसर रोग से लड़ने एवं उपचार आदि से उत्पन्न समस्याओं का सामना करने में हिप्नोथेरेपी को एक प्रभावकारी एवं लाभकारी उपाय के रूप में अपनाया जा सकता है।

उल्लेखनीय है कि इस शोध अध्ययन के परिणाम में जो सकारात्मक एवं प्रभावी निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं, उनके पीछे का मुख्य कारण प्रयोग हेतु अपनायी गई विशिष्ट चिकित्सा विधि-हिप्नोथेरेपी है। यह थेरेपी रोग एवं रोगजन्य समस्याओं पर ही नहीं, अपितु संपूर्ण व्यक्तित्व पर सकारात्मक प्रभाव डालती है। इस शोध अध्ययन के प्रयोग में शोधार्थी ने हिप्नोथेरेपी के अंतर्गत जिन विशेष प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया है, वे सभी व्यक्तित्व की क्षमताओं को प्रभावित एवं विकसित बनाने में समर्थ कही जाती हैं।

इस चिकित्सा की पहली प्रक्रिया है—साइकोएजुकेशन। इसके अंतर्गत रोगी को रोग के स्वरूप, कारणों, प्रभावों की जानकारी देने के साथ-साथ उसके उपचारात्मक पहलुओं में रोगी की भूमिका का बोध कराया जाता है। दूसरे क्रम में इन्डक्सन टेक्नीक्स आती हैं, जिनमें रोगी अपने शरीर एवं मन की गतिविधियों पर सजगता और स्व-नियंत्रण द्वारा आंतरिक स्थिरता और शांति की अनुभूति तक पहुँचता है।

तीसरे क्रम में डीपनिंग टेक्नीक है, जिसके माध्यम से रोगी और उपचारकर्त्ता के बीच संकेतात्मक संवाद स्थापित होता है और रोगी क्रमश: समाधि की स्थिति अर्थात चेतना की गहराई में पहुँच जाता है। अगले चरण में उपचारकर्त्ता थेरेपेटिक टेक्नीक्स का प्रयोग करता है। इसमें हिप्नोटिक हाइपरथर्मिया, हिप्नोटिक इम्यूनोथेरेपी, स्प्रिचुअल फेथ, दि मून मेटाफोर तथा रिजुविनेटिंग सोलर प्लेक्सेस चक्र आदि प्रक्रियाओं का हिप्नोथेरेपी तकनीकों के रूप में प्रयोग किया गया है।

इस शोध अध्ययन की उपचार-विधि एवं शोध परिणामों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कैंसर जैसी भयावह बीमारी के प्रबंधन में हिप्नोथेरेपी की तकनीकें कारगर उपाय हो सकती हैं। यह चिकित्सा के समग्र स्वास्थ्य मॉडल पर आधारित विधि है, जिसका कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता, अपितु संपूर्ण स्वास्थ्य पर सकारात्मक और सार्थक प्रभाव पड़ता है। इस अध्ययन में शोधार्थी ने कैंसर मरीजों के समग्र स्वास्थ्य प्राप्ति के उद्देश्य से हिप्नोथेरेपिक मॉडल प्रस्तुत किया है।

इसी तरह इस विशिष्ट चिकित्सापद्धति को अन्य बीमारियों एवं समस्याओं के प्रबंधन में भी अपनाया जा सकता है। इस चिकित्सा में यह भी ध्यान देने योग्य बाते हैं कि इसकी सफलता एवं सार्थकता उपचारकर्त्ता की विशेषज्ञता तथा रोगी का इस चिकित्सा में विश्वास और विचार-कल्पनाशक्ति को सार्थक दिशा में ले जाने की क्षमता हो, तभी सम्मोहन चिकित्सा संभव हो पाती है। ❑

हिरण्मयेन पात्रेण।
सत्यस्यापिहितं मुखम्॥

सोने के पात्र से सत्य का मुँह ढका रहता है अर्थात माया के बंधन परमात्मा को अनुभव नहीं करने देते।

गीज़ा के पिरामिडों का रहस्यमयी संसार

विश्व में ऐसी कितनी प्राचीन रचनाएँ हैं, जो आज के वैज्ञानिक युग में जी रहे इनसान के लिए आश्चर्य का विषय हैं कि ये कैसे बनीं व इनमें प्रयुक्त सामान कहाँ से आया तथा इनको बनाने के पीछे का मूल उद्देश्य क्या था। मिस्र में निर्मित गीजा के पिरामिड इन्हीं में से एक हैं। हजारों वर्षों की गरमी-सरदी, आँधी-तूफान व भूकंप की मार खाते हुए भी वे यथावत् खड़े हैं और विज्ञान के शिखर की ओर बढ़ रही मानवीय मेधा के लिए आज भी एक चुनौती बने हुए हैं। कई मानों में इनका अद्भुत संसार मनुष्य को विस्मित एवं रोमांचित करता है।

इनको लगभग 4500 वर्ष पुराना माना जाता है, जब मिस्र के शासक कुफू के दौर में इनका निर्माण प्रारंभ हुआ। इस लंबे दौर में न जाने कितने विदेशी आक्रांता उस भूमि पर आए, उन्होंने वहाँ शासन भी किया, परंतु तब भी ये पिरामिड सबको अचंभित करते रहे तथा अपनी उपस्थिति से सबको आश्चर्यचकित करते रहे।

वैसे विश्व में अब तक कई स्थानों पर छोटे-बड़े पिरामिड मिल चुके हैं। आज से लगभग 4,000-5,000 वर्ष पूर्व विश्व के हर कोने में लगभग एक ही काल में पिरामिड बनाए गए। यह वह काल था जब मिस्र, सुमेरिया, बेबीलोनिया, मेसोपोटामिया, असीरिया आदि प्राचीन सभ्यताएँ अपने विकास के चरम पर थीं, लेकिन मिस्र के पिरामिड विश्व में अधिक प्रख्यात हुए।

आज तक मिस्र में 138 पिरामिड मिल चुके हैं, इतनी ही संख्या के विषय में अनुमान है कि वे रेत के नीचे दबे हुए हैं, लेकिन गीजा का महान पिरामिड इन सबमें सबसे विलक्षण है। बाकी छह प्राचीन आश्चर्य, काल के थपेड़े खाकर लुप्तप्राय अवस्था में हैं; जबकि गीजा का पिरामिड अपनी भव्यता के साथ कुछ खरोंचें खाने के बाद भी जैसे सीना ताने खड़ा है।

ईसा पूर्व 2560 में बनाया गया यह पिरामिड 3,800 वर्षों तक विश्व की सबसे ऊँची संरचना रही। इसे मिस्र के सम्राट या फैरो कुफू के काल में बनाया गया था, अत: इसे कुफू पिरामिड के नाम से भी जाना जाता है। इसको मिलाकर तीन पिरामिडों की शृंखला एक साथ है। मिस्र में कायरो शहर के समीप रेगिस्तान में बने इन पिरामिडों को इजरायल के पहाड़ों से देखा जा सकता है और माना जाता है कि ये चाँद से भी दिखाई देते हैं।

प्राचीन यूनानी इतिहासविद् हेरोडोटस का मानना था कि लगभग एक लाख श्रमिकों ने 20 वर्ष के काल में इन्हें बनाकर खड़ा किया था। कालक्रम में लुटेरों ने इनमें रखे गए अधिकांश खजाने पर हाथ साफ कर लिया। सन् 1880 में पहली खुदाई में पुरातत्त्वविद् इनका मात्र अनुमान ही लगा पाए। इनमें राजा-रानी के लिए बनाए गए तहखानों में रखी गई ममियाँ भी न मिल सकीं। मालूम हो कि खोज के आधार पर पिरामिड में तीन तहखाने मिले हैं—आधार तहखाना, रानी का तहखाना और राजा का तहखाना, जिन्हें माना जाता है कि राजा-रानी के शव-संरक्षण के लिए इन्हें बनाया गया था। इन पिरामिडों में कुल कितने तहखाने हैं, इसे अभी तक कोई भी नहीं जानता।

यह माना गया कि इन्हें उस काल के राजाओं की कब्र के रूप में तैयार किया गया था, जिसमें उनकी ममी के साथ उनके खाने-पीने की आवश्यक वस्तुएँ, नाव, भोजन, इत्र, आभूषण को साथ रखा जाता था। यहाँ तक कि सेवक-सेविकाओं के अवशेष तक उनके आस-पास पाए गए हैं। प्राचीन मिस्र में विश्वास था कि ये सब चीजें मरने के बाद स्वर्ग तक की यात्रा में मृतात्मा का साथ देंगी व उसकी मरणोत्तर यात्रा सुखद होगी।

गीजा का महान पिरामिड अपनी कई विशेषताओं के आधार पर आज भी विश्व का प्रमुख प्राचीन आश्चर्य है। एक तो इसका आकार बहुत बड़ा है। यह पिरामिड लगभग 450 फीट ऊँचा है। इसकी मूल ऊँचाई 481 फीट थी, जिसका शीर्ष भाग ढहने के कारण इसकी ऊँचाई 31 फीट कम हो गई है। यह लगभग 23 लाख चूने के 5 से 10 टन भारी पत्थरों से बना है। इसमें प्रयुक्त कुछ पत्थरों का भार तो 40 टन तक है। इसमें अंदर ग्रेनाइट पत्थरों का भी प्रयोग हुआ है।

इतने भारी और इतने सारे पत्थर रेगिस्तान में कहाँ से लाए गए, यह भी एक बड़ा आश्चर्य है। फिर इनको एक के ऊपर एक करके इस सफाई के साथ किस तरह से जोड़ा गया

कि एक सटीक तिकोने आकार में पूरा ढाँचा खड़ा हो गया—यह भी एक बड़ा आश्चर्य है। इतने भारी पत्थरों को ऊँचाइयों तक किस मशीन से ले जाया गया होगा, यह भी चकित करने वाला है, क्योंकि उस समय तक पहियों एवं आज की तरह की भारी क्रेनों का आविष्कार नहीं किया गया था।

हालाँकि इन पिरामिडों तक पूरी पहुँच बाहरी दुनिया की कभी भी नहीं रही। सीमित काल तक ही कुछ पुरातात्त्विक एवं वैज्ञानिक प्रयोग यहाँ हुए हैं। इतने भर से इन पर शोध कर रहे विशेषज्ञ एवं वैज्ञानिक पिरामिड से जुड़े रहस्यों को लेकर रोमांचित हैं और अभी तक इन पिरामिडों से जुड़े कई रोचक तथ्य सामने आ चुके हैं।

पिरामिड के आंतरिक कक्षों में तापमान 20 डिगरी के आस-पास बना रहता है; जबकि बाहर गरमी में रेगिस्तान 50 डिगरी के तापमान तक तप रहा होता है। एक तरह का वातानुकूलित वातावरण पिरामिड के अंदर तैयार किया गया है। साथ ही अंदर प्रवेश की सुरंगों में कोई प्रकाश की व्यवस्था नहीं है।

यह एक स्वाभाविक प्रश्न है कि प्राचीनकाल में मिस्रवासी अंदर प्रवेश कैसे करते रहे होंगे? यदि कोई मशाल या दीये का उपयोग होता तो दीवारों पर कालिख के निशान अवश्य होते, लेकिन ऐसा कुछ भी वहाँ नहीं दिखता। क्या उस समय सौरचालित या कोई अन्य उपकरण थे, जिनके सहारे इन अँधेरी सुरंगों में प्रवेश किया जाता था—यह प्रश्न आज भी अनसुलझा बना हुआ है।

गीजा के तीनों पिरामिड एक नक्षत्र के तीन तारों की तरह एकदूसरे की सीध में हैं। ओरियन नक्षत्र के तीन तारे अल्निटक, अल्निलम और मिंटक इन तीनों पिरामिडों के साथ संरेखित हैं, जो स्वयं में एक रहस्यमयी तथ्य है। इन पिरामिडों का निर्माण पृथ्वी के पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी एवं दक्षिणी अक्षांशों के मिलान बिंदु पर हुआ है, जो इन्हें पृथ्वी के केंद्र में स्थापित करता है। शून्य की खोज के बहुत पहले ऐसी उच्चस्तरीय खगोल गणना किस तरह से संभव हुई, चकित करती है। कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि मिस्रवासियों को यह ज्ञान भारत से प्राप्त हुआ था।

कुछ लोगों का मानना है कि इन पिरामिडों की वृहद् एवं अद्भुत संरचना मात्र कब्र के उद्देश्य से बनी हुई नहीं हो सकती। ये ऊर्जा निर्माण के केंद्र थे। इसके संकेत भी किन्हीं पिरामिडों के भित्तिचित्रों में मिल रहे हैं। कुछ लोगों का तो यहाँ तक मानना है कि अन्य ग्रहों के विकसित प्राणियों ने भी इन्हें बनाने में अपनी भूमिका का निर्वहन किया है। कुछ पिरामिडों के भित्तिचित्रों में कुछ विचित्र-सी आकृतियाँ इस ओर संकेत भी करती हैं। कुछ आकृतियाँ तो उड़नतश्तरियों जैसी दिखती हैं।

जो भी हो, विश्व का यह प्राचीन आश्चर्य आज भी अपनी भव्य उपस्थिति के साथ पर्यटकों एवं दर्शकों को विस्मित करता है, जिसके कुछ रहस्य प्रकाशित हो चुके हैं तथा बहुत कुछ का सुलझना अभी शेष है तथा इस दिशा में खोजें निरंतर जारी हैं। एक बात स्पष्ट हो चुकी है कि पिरामिड ब्रह्मांडीय ऊर्जा को समाहित करने वाली संरचना हैं, जिसके कारण इनके अंदर एक ऊर्जायुक्त वातावरण तैयार हो जाता है, जो जीवित या मृत, जड़ या चेतन—हर तरह की वस्तु के ऊपर अपना सकारात्मक प्रभाव डालती है। इस विशेषता के आधार इन पिरामिडों को विशिष्ट उपासना-केंद्रों के रूप में भी समझा जाने लगा है। अपनी स्थापना के हजारों वर्ष बाद भी ये पिरामिड आज भी हमारे लिए रहस्य ही हैं। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

परम आनंद का द्वार है ध्यान

ध्यान आत्मोपलब्धि का साधन है। ध्यान अपने आत्मलोक में प्रवेश पाने का द्वार है। ध्यान अपने आत्मस्वरूप को पाने का साधन है। ध्यान चेतना की आनंदमयी, चैतन्यमयी व सत्यमयी अवस्था है। ध्यान में बैठकर ही जीवात्मा को इस आनंदमयी अवस्था की उपलब्धि व अनुभूति होती है। अभी तो हम संसार में खोये हैं। संसार में सोये हैं। संसार में रचे-बसे हैं। चित्तवृत्तियों के शोर-शराबे में हम अपने अंतस् की पुकार नहीं सुन पा रहे हैं। हम सुख की खोज में, सुख की चाह में न जाने कब से, कितने जन्मों से विषयभोगों के पीछे भागते फिर रहे हैं। न जाने कितने जन्मों में, कितने शरीरों में हमने सुख की चाह में विषयों को भोगा, वासनाओं को जिया, पर फिर भी मन कभी तृप्त हुआ नहीं। इंद्रियाँ कभी तृप्त हुई नहीं।

सुख पाने की इसी मृगतृष्णा में हम न जाने कितनी बार जन्मे और कितनी बार मरे हैं, पर फिर भी अब तक न तो इंद्रियाँ तृप्त हो सकीं और न ही मन। वास्तव में विषयभोगों से सुख पाने की यह मृगतृष्णा रेगिस्तान में शीतल जल पा लेने की है और उसे पीकर तृप्त हो जाने की है। इसलिए हम सुख की खोज में शीतल जल पाने व पीने की आस में रेगिस्तान में ही चलते रहे, थकते रहे और आगे बढ़ते रहे, पर आज तक वह चाह पूरी हुई नहीं। हमने रेगिस्तान में कभी शीतल जल पाया नहीं और हमारी प्यास कभी बुझी ही नहीं।

सुख पाने की हमारी चाह, हमारी प्यास गलत नहीं। गलत तो उसे पाने के लिए गलत दिशा में चलना है। हम अब तक गलत दिशा में चलते रहे। इसलिए सुख पाने की हमारी चाहत अब तक अधूरी ही रही। जीवात्मा में आनंद पाने की चाह स्वाभाविक है; क्योंकि जीवात्मा में सत्-चित्-आनंदस्वरूप परमात्मा की उपस्थिति है, पर स्वयं को शरीर, बुद्धि, मन व इंद्रियों का समुच्चय मात्र मान लेने के कारण हमें अपने ही भीतर बैठे परमात्मा की उपस्थिति का बोध नहीं हो रहा। उनके होने की अनुभूति नहीं हो रही।

जिस दिन, जिस पल वह अनुभूति घट गई, मानो उसी समय, उसी पल हमारे लिए आनंद का द्वार खुल गया। इसके लिए हमें बाहर नहीं, अपने भीतर ही यात्रा करनी होगी। अपने सत्-चित्-आनंदस्वरूप को पाने के लिए हमें आत्मलोक में प्रवेश पाना ही होगा। हमें अंतर्जगत की यात्रा पर निकलना ही होगा, पर इस यात्रा हेतु हमें एक समर्थ साधन की आवश्यकता भी होगी। ध्यान भी एक ऐसा ही समर्थ साधन है, जिस पर सवार होकर, जिससे होकर, जिससे गुजरकर हम इस यात्रा का आरंभ भी कर सकते हैं और इस यात्रा को पूर्ण भी।

वैसे तो ध्यान की कई पद्धतियाँ प्रचलित हैं। निराकार ध्यान में हम निर्गुण, निराकार, सर्वव्यापी ब्रह्म का ध्यान कर सकते हैं। हम साकार ध्यान के अंतर्गत भगवान राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, हनुमान, गायत्री, दुर्गा के रूप में ब्रह्म के साकार स्वरूप का ध्यान कर सकते हैं। साथ ही हम परमपूज्य गुरुदेव युगऋषि श्रीराम शर्मा आचार्य जी का भी ध्यान कर सकते हैं। हम पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रतिपादित सविता ध्यान, पंचकोशी ध्यान, तीन शरीरों का ध्यान, अमृत वर्षा ध्यान आदि का भी अभ्यास कर सकते हैं।

अपनी अभिरुचि व प्रकृति के अनुसार हम इनमें से किसी भी एक ध्यान का अभ्यास कर सकते हैं, पर ध्यान में नियमितता व निरंतरता भी आवश्यक है। साथ ही जीवन में संयम, सेवा व सदाचार भी आवश्यक हैं तभी हमारा ध्यान निर्विघ्न हो सकेगा। हमारी अंतर्यात्रा निर्विघ्न हो सकेगी, हमारी यात्रा पूरी हो सकेगी। ध्यान में उतरते ही हमारी यात्रा प्रारंभ हो सकेगी। हम ध्यान में जितना अधिक उतरते जाएँगे, हमारा ध्यान जितना अधिक गहराता जाएगा—हमारी यह यात्रा उतनी ही तीव्र होती जाएगी। हमारी बाहर की यात्रा तब उतनी ही घटती जाएगी, छूटती जाएगी, मिटती जाएगी, सिमटती जाएगी और हम अपने आत्मलोक की ओर उतनी ही तीव्रता से बढ़ते जाएँगे। हमारे मन व इंद्रियों की चंचलता तब उतनी ही कम होती जाएगी। चित्त से उठने वाले संस्कारों के शोर-शराबे धीरे-धीरे शांत होते जाएँगे और फिर चित्त

के संस्कार शून्य होते ही हम अपने आत्मलोक में प्रवेश पा सकेंगे।

श्रीरामकृष्ण परमहंस जी अपने शिष्यों से कहा करते थे कि कलकत्ता से बनारस की ओर जाते ही कलकत्ता पीछे छूटता जाएगा। कलकत्ता से बनारस की ओर जितना अधिक बढ़ते जाओगे, कलकत्ता उतना ही पीछे छूटता जाएगा और बनारस पहुँचते ही, बनारस में प्रवेश पाते ही कलकत्ता पूरी तरह से पीछे ही छूट जाएगा। दरअसल यह संसार से भगवान की ओर बढ़ते जाने की यात्रा है।

संसार जितना पीछे छूटता जाएगा, हम भगवान के उतने ही करीब पहुँचते जाएँगे। संसार के प्रति, विषयभोगों के प्रति हमारी आसक्ति जितनी कम होती जाएगी, भगवान के प्रति हमारा प्रेम उतना ही प्रगाढ़ होता जाएगा, प्रबल होता जाएगा। मन के पार जाना आसान नहीं तो असंभव भी नहीं है। इसलिए जब अर्जुन ने गीता में भगवान से पूछा—"भगवन्! वायु से अधिक वेगवान, गतिमान, चंचल मन को वश में कैसे किया जा सकता है।" तब भगवान ने कहा—"मन निस्संदेह चंचल है, पर अभ्यास व वैराग्य के द्वारा इसे वश में किया जा सकता है।" वैराग्य के अभ्यास से संसार के प्रति हमारी आसक्ति कम होती जाती है और अंततः यह आसक्ति समाप्त ही हो जाती है। हमें नित्य-अनित्य, सत्य-असत्य का बोध होने लगता है। तब हम अपनी मंजिल के करीब पहुँचते जाते हैं।

जब हम किसी वायुयान में सफर करते हैं, तब उस गतिमान वायुयान में बैठे हुए हम देखते हैं कि कई शहर पीछे छूटते जा रहे हैं, कई नदियाँ रास्ते में आईं और ओझल हो गईं। रास्ते में कई सागर-महासागर आए और अदृश्य हो गए। वे पीछे रह गए, वे पीछे छूट गए। कई वनक्षेत्र आए, पर्वत-शृंखलाएँ आईं और अदृश्य हो गईं, ओझल हो गईं। कभी घोर अँधेरी रात आई और चली गई। कभी भोर हुआ और सूर्य का उजाला प्रकट हुआ और इस प्रकार इन सबको देखते हुए, उन सबके बीच से, ऊपर से गुजरते हुए हम आगे बढ़ते गए, आगे बढ़ते ही रहे। और अंततः हमारा वायुयान अपने गंतव्य को पहुँचते ही हवाई पट्टी पर उतरने को तैयार हुआ। वायुयान के उतरते ही हम अपने गंतव्य तक उतर आते हैं। हम गंतव्य तक पहुँचते ही प्रसन्न हो उठते हैं।

इसी प्रकार ध्यान के यान पर सवार होकर, ध्यान से होकर, ध्यान से गुजरकर हम भी आत्मलोक की यात्रा पर निकल पड़ते हैं। हम अपने ही अंदर की यात्रा पर, अंतर्जगत की यात्रा पर निकल पड़ते हैं। ब्रह्म का ध्यान करते-करते आत्मा ब्रह्म में लीन होती जाती है, डूबती जाती है और हमें कई दृश्य-परिदृश्य दिखाई पड़ने लगते हैं, पर उन दृश्यों के प्रति अब हमारी कोई आसक्ति नहीं रह जाती; क्योंकि तब हम मात्र द्रष्टा रह जाते हैं, इसलिए कोई भी दृश्य, कोई भी विषयभोग हमारे भीतर कुछ हलचल नहीं पैदा कर पाता। तब हम जगत् के प्रपंच को साक्षी भाव से देखते हैं।

जगत् के खेल को देख तो अवश्य रहे हैं, पर खिलाड़ी बनकर नहीं, द्रष्टा बनकर; क्योंकि हम अब तटस्थ जो हो गए। खेल में हार हो या जीत हो, अब इसकी परवाह ही कहाँ रही। हर्ष हो या विषाद हो, मान हो या अपमान हो इसकी चिंता ही कहाँ रही। इसका भान ही कहाँ रहा। कई दृश्य आए और अदृश्य हुए। चित्त में दफन कई जन्मों के संस्कार दृश्यमान हुए और अदृश्य भी।

अब हम किसी दृश्य में, किसी क्रिया में बँध नहीं रहे; क्योंकि हमारा हर कर्म ही निष्काम हो गया। हम अब दर्शक नहीं, द्रष्टा हो गए। भोगों के बीच रहकर भी अभोगी हो गए। कर्म करते हुए भी निष्काम हो गए। हमारे चित्त के सारे संस्कार एक-एक कर पीछे छूटते जा रहे। वैसे ही, जैसे उड़ते हुए वायुयान में बैठे व्यक्ति के सामने सारे दृश्य पीछे छूटते जाते हैं। जिन भोग पदार्थों को देखकर कभी चित्त सागर में बड़ी-बड़ी लहरें उठा करती थीं, वे सारी लहरें अब एक-एक कर शांत होने लगी हैं।

ध्यान में डूबी हुई आँखों से हम देख रहे हैं कि हम कैसे विशाल चित्त सागर को पार करते हुए अपने हृदय में प्रवेश कर रहे हैं। हम अपने आत्मलोक में प्रवेश कर रहे हैं। हमारा मन भी अब शून्य में विलीन होने लगा है। फिर हम देखते हैं कि हमारे हृदय की गंभीर शांति में एक अग्नि जल रही है। यही है हमारे अंतस् में रहने वाले भगवान का दिव्य अंश, हमारी सत्य सत्ता, हमारी आत्मा। यही है हमारा आत्मलोक, जिसके अनंत क्षितिज में कोटिशः सूर्य, चंद्र, तारे जगमगा रहे हैं। तब हम महसूस करेंगे कि हमारे हृदयलोक में, आत्मलोक में पूरा ब्रह्मांड ही समाया हुआ है।

यह अंतरिक्ष, आकाश, यह सारा ब्रह्मांड हमारी ही आत्मा का विस्तार है। हृदय में करुणा व प्रेम की अखंड अमृतधाराएँ बह-बहकर सागर-महासागर का रूप ले रही हैं। सागर की उन लहरों पर हमारी आत्मा का पूर्ण प्रकाश,

पूर्ण चंद्रमा बनकर छिटक रहा है। हमारी आत्मा का प्रकाश सूर्य की तरह ज्योतिर्मय रूप में हमारे हृदयाकाश में प्रकट हो चला है।

हमारे हृदय में जलने वाली छोटी-सी अग्निशिखा ही सूर्य बनकर जगमगा रही है। यही है अग्निरूप आत्मा का सूर्य रूप परमात्मा में पूर्णतः विलय, विसर्जन व विश्राम। यही है आत्मा का परमात्मा से मिलन। साधक के लिए, ध्याता के लिए यह क्षण, यह पल बड़ा ही आनंददायी है, आह्लादकारी है, यही समाधि है, मोक्ष है, मुक्ति है, कैवल्य है, निर्वाण है, यही आत्मसाक्षात्कार व ईश्वरसाक्षात्कार है।

यही ध्यान का अंतिम पड़ाव व परिणति है। यही अंतर्जगत की यात्रा का अंत है। यही अंतिम पड़ाव व परिणति है। यही अपनी आत्मा में सत्-चित्-आनंदस्वरूप भगवान के होने की अनुभूति है। और इसी अनुभूति में आनंद है, परमानंद है, ब्रह्मानंद है।

यह अनुभूति उन ऋषि-मुनियों की है, योगियों की है, ज्ञानियों की है, भक्तों की है, साधकों की है, तपस्वियों की है, जिन्होंने ब्रह्म का सतत चिंतन करते हुए, ध्यान करते हुए अपनी आत्मा में ही ब्रह्म की अनुभूति की, परम आनंद की अनुभूति की। अस्तु यह एक अनुभूत सत्य है। यह जाँचा व परखा गया मार्ग है। यह मार्ग हमारे लिए भी सुलभ है, सहज है। ब्रह्म का निरंतर ध्यान करता हुआ कोई भी साधक इसकी अनुभूति कर सकता है। जैसा कि संत कबीर ने अपने प्रस्तुत दोहे में कहा है—

लिखा लिखी की है नहीं,
देखा देखी की बात।
दुलहा दुलहिनि मिलि गए,
फीकी परी बरात॥
तू कहता कागद की लेखी,
मैं कहता आँखिन की देखी॥

अर्थात यह कोई लिखी हुई नहीं, बल्कि देखी हुई बात है कि सतत चिंतन व ध्यान से जीवात्मा परब्रह्म परमात्मा की अनुभूति कर सकती है। तुम कागज पर लिखी बातें कहते हो, पर मैं तो वही कहता हूँ, जिसे मैंने अपनी आँखों से देखा व अनुभव किया है। ❑

एक साधक 20 वर्षों तक तपस्या करने के पश्चात अपने गाँव पहुँचा तो उत्सुक गाँववासियों की भीड़ एकत्र हो गई। किसी ने पूछा कि इतने वर्ष तपस्या करने के बाद तुम्हें क्या सिद्धियाँ प्राप्त हुईं। साधक सिद्धियों के अभिमान में था, सो बोला कि अभी तुम्हें चमत्कार दिखाता हूँ। उसने अपनी अंजलि में जल लेकर एक चिड़िया पर छिड़का तो देखते-देखते चिड़िया के प्राण निकल गए। साधक ने उसके समीप जाकर एक मंत्र बोला और चिड़िया पंख फड़फड़ाती दूर उड़ गई।

साधक की माँ वहाँ खड़ी थी। उसने उससे पूछा—"ये बताओ कि यह बाजीगरी दिखाकर तुम्हें क्या लाभ हुआ? 20 वर्षों में तेरी राह देखते-देखते तेरे पिताजी की मृत्यु हो गई। मैं वर्षों से अपाहिज का जीवन जी रही हूँ, पर तेरा सहारा न मिल सका। यदि इतने वर्ष तूने उन लोगों की सेवा-सहायता में लगाए होते, जो तुझ पर निर्भर थे तो संभवतया तू कुछ पुण्य का अधिकारी होता।" साधक का मिथ्या अभिमान चूर हो चुका था।

युगगीता —253

मृत्युपर्यंत कामनाओं के पीछे भटकते लोग

(श्रीमद्भगवद्गीता के दैवासुरसम्पद्विभागयोग नामक सोलहवें अध्याय की ग्यारहवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय के दसवें श्लोक की व्याख्या इससे पूर्व की किस्त में प्रस्तुत की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान कहते हैं कि आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य दंभ, मान और मद से युक्त होकर, कभी न पूर्ण हो सकने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर, अपवित्र व्रतों को धारण करके, मोहवश दुराग्रहों को धारण करते हुए संसार में विचरण करते हैं। इस श्लोक के माध्यम से श्रीभगवान अर्जुन को आसुरी प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों के लक्षणों को और भी विस्तार से समझाते हैं। वे कहते हैं कि आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य दंभ, मान एवं मद से युक्त होते हैं। जो हमारे पास न हो, परंतु उसके होने का अभिमान हो तो ये भाव 'दंभ' कहलाता है। अपने आप को श्रेष्ठ, विशिष्ट मानने का भाव 'अभिमान' कहलाता है और स्वयं के सौंदर्य, धन, पद, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य इत्यादि के ऊपर निरंतर गर्व और अहंकार करने का भाव 'मद' कहलाता है। इन तीनों में से यदि एक ही अवगुण मनुष्य के व्यक्तित्व में हो तो उसका पतन सुनिश्चित हो जाता है एवं यदि तीनों ही अवगुण एक साथ मनुष्य के भीतर जा जाएँ तो उसका व्यक्तित्व कितना रुग्ण और विकृत हो जाएगा, इसकी कल्पना सहज ही संभव है।

जिस व्यक्ति के पास दंभ, मद एवं मान से युक्त व्यक्तित्व होता है—ऐसा व्यक्ति जीवन में कोई प्रगति नहीं कर पाता; क्योंकि उसकी स्वयं की गलतियों को देखने की, उनको सुधारने की एवं अच्छी व सच्ची शिक्षाओं पर अमल करने की क्षमता समाप्त हो जाती है। ऐसा व्यक्ति सदा स्वयं को सही एवं दूसरों को गलत मानता है। ऐसा व्यक्ति फिर कभी न पूर्ण होने वाली कामनाओं के पीछे स्वयं भटकता तथा दूसरों को भटकाता चलता है। कामनाएँ कभी पूरी नहीं हो सकतीं और न कभी पूरी की जा सकती हैं; क्योंकि उनका स्वभाव ही कभी पूर्ण न होने का है। इसीलिए ऐसे व्यक्ति मिथ्याचरण एवं दुराग्रह के शिकार हो जाते हैं। ऐसे आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य जिनके व्यक्तित्व के केंद्र में अहंकार है, परिधि में कभी पूरी न हो सकने वाली कामनाएँ हैं—ये इसी दुराग्रह में पड़े रहते हैं कि यही जीवन है। इसीलिए वे सदा असंतुष्ट, दुःखी एवं त्रस्त बने रहते हैं।]

इसके बाद भगवान श्रीकृष्ण अपना अगला सूत्र कहते हैं—

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥11॥

शब्दविग्रह—चिन्ताम्, अपरिमेयाम्, च, प्रलयान्ताम्, उपाश्रिताः, कामोपभोगपरमाः, एतावत्, इति, निश्चिताः।

शब्दार्थ—मृत्यु पर्यंत रहने वाली (**प्रलयान्ताम्**), असंख्य (**अपरिमेयाम्**), चिंताओं का (**चिन्ताम्**), आश्रय लेने वाले (**उपाश्रिताः**), विषयभोगों के भोगने में तत्पर रहने वाले (**कामोपभोगपरमाः**), और (**च**), इतना ही सुख है (**एतावत्**), इस प्रकार (**इति**), मानने वाले होते हैं (**निश्चिताः**)।

अर्थात वे मृत्युपर्यंत रहने वाली अपार चिंताओं का आश्रय लेने वाले, पदार्थों का संग्रह एवं विषयभोगों को भोगने में तत्पर रहने वाले और 'यही सुख है' ऐसा मानने वाले होते हैं। जिन्होंने अपने जीवन का मूल ध्येय भोगों को भोगना ही बना लिया हो, ऐसे आसुरी स्वभाव वाले लोग असंख्य चिंताओं का आश्रय लिए हुए होते हैं; क्योंकि भोगों को भोगने का कभी कोई अंत नहीं।

एक कामना पूर्ण नहीं हो पाती कि नई कामना की पूर्ति की चिंता व्यक्ति को सताने लगती है। ऐसी कामनाओं का जीवन भर अंत नहीं होता, यहाँ तक कि ऐसी कामनाएँ जीवनपर्यंत यानी मृत्यु के बाद भी इन मनुष्यों का साथ नहीं छोड़तीं और ऐसे लोग मृत्यूपरांत अधोयोनियों में, प्रेत-पिशाच बनकर अपनी कामनाओं की पूर्ति की इच्छा लिए भटकते ही रहते हैं। ऐसा करने के पीछे, बार-बार दु:ख मिलने के बाद भी, बार-बार कामनाओं की अपूर्णता अनुभव करने के बाद भी उन्हीं के पीछे भटकते रहने के पीछे उनका कारण यह होता है कि वे इसी को जीवन या इसी को सुख मान बैठते हैं। यही उनकी मूल मान्यता बन जाती है कि जीवन का जो भी सार है, वो इतना ही है, यही जीवन का सुख है और इसलिए उनके जीवन की दौड़ इन्हीं चंद उद्देश्यों के इर्द-गिर्द घूमती रहती है।

श्रीभगवान यहाँ एक बहुत मूल्य की बात कहते हैं। वे कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति फिर पदार्थ की खोज में और पदार्थ के संग्रह में लग जाता है। दैवी संपदा से युक्त व्यक्ति इनकी निस्सारता से परिचित होता है, वह जानता है कि ये सब व्यर्थ हैं, इसीलिए फिर उसके जीवन की गति पदार्थ संग्रह की ओर न लगकर चेतना के परिमार्जन में लग जाती है। इसके विपरीत जो व्यक्ति अपने आप को खोज नहीं रहा है, या खोजना नहीं चाहता है, जिसके जीवन की दिशा चेतना की ओर नहीं है तो वह पदार्थ खोजने चल पड़ता है।

इस जगत् में अस्तित्व दो ही तत्त्वों में विभाजित है—चेतना या पदार्थ। चेतना की ओर चलने वाले आत्मानुसंधान, आत्मसाक्षात्कार के पथ पर चल निकलते हैं और पदार्थ की ओर चलने वाले कभी न पूर्ण होने वाली कामनाओं की तुष्टि के लिए बढ़ चलते हैं। इसीलिए चेतना के, ईश्वर के अस्तित्व को नकारने वाले आसुरी प्रवृत्ति के मनुष्य फिर पदार्थ का संग्रह करने निकल पड़ते हैं।

जो व्यक्ति पदार्थ के संग्रह को सत्य मानता हो उसके चिंतन से धर्म, न्याय, नीति जैसी सोच विदा हो जाती है, फिर उसको यही लगता है कि येन-केन प्रकारेण ज्यादा-से-ज्यादा पदार्थ इकट्ठा कर लूँ। यदि भाव ऐसे हों तो किसी-न-किसी से तो छीनना ही पड़ता है। पदार्थों का संग्रह दूसरे के साथ अनीति किए बिना, दूसरे का शोषण किए बिना संभव ही कहाँ है?

ऐसा व्यक्ति जाने-अनजाने हिंसा के पथ पर बढ़ चलता है। उसके हृदय के दया, करुणा, मानवता के भाव धीरे-धीरे शुष्क एवं मंद पड़ने लगते हैं। वृत्तियाँ कठोर एवं क्रूर होने लगती हैं; क्योंकि अब चिंतन में बाँटने का स्थान बटोरने ने ले लिया है।

सिकंदर के जीवन की कथा आती है कि जब वो पुरु के साथ हुए युद्ध में नैतिक दृष्टि से एक तरह से परास्त होकर वापस यूनान को लौट रहा था, तब उसकी सेना की स्थिति बहुत विषम हो चली थी। सारे सैनिक थक चुके थे। मानसिक रूप से क्लांत एवं परेशान थे। कई घायल थे, अनेकों मारे जा चुके थे। जो शेष थे, वे भी जैसे-तैसे ही लौटने का प्रयत्न कर रहे थे। मार्ग में एक वृद्ध महिला का घर पड़ा तो सिकंदर के सेनापति ने उससे प्रार्थना की कि कुछ लोगों को भोजन वो महिला करा दे।

उस वृद्ध महिला को यह पता न था कि ये सिकंदर की सेना के लोग हैं—उसने तो दयावश भोजन तैयार करना शुरू कर दिया। भोजन तैयार होने पर वो इनको परोसने लगी। सिकंदर के सेनापति को लगा कि यदि वो इस वृद्ध महिला को ऐसा परिचय दे कि ये विश्वविजेता सिकंदर हैं तो संभव है कि महिला और भी ज्यादा ध्यान के साथ उनको भोजन कराए।

इस सोच के साथ उसने सिकंदर का परिचय उससे कराया। यह जानते ही कि वो बीच में बैठा व्यक्ति सिकंदर है, वो महिला रोटियाँ परोसना छोड़कर घर के अंदर चली गई और अंदर से कुछ सोने के सिक्के लाकर सिकंदर की थाली में उसने डाल दिए।

सिकंदर आश्चर्यमिश्रित स्वर में बोला—"अरे! मुझे रोटियाँ ही दे देती माँ। ये सिक्के क्यों दिए?" वो वृद्ध महिला बोली—"बेटा! तेरा पेट यदि रोटियों से भर जाता तो तू इन सिक्कों के लिए मारा-मारा क्यों घूमता? तुझे वो ही दिए हैं, जिनसे तेरा पेट भर जाए।"

आसुरी वृत्ति वाले ऐसे ही पदार्थों के संग्रह को अपने जीवन का ध्येय बना लेते हैं। उनका संग्रह करना, उन्हीं कामनाओं की पूर्ति में जीवन को लगाना और उन्हीं विषयभोगों को पूर्ण करने के लिए तत्पर रहना, ऐसी उनकी मान्यता होती है। साथ ही वे ये भी सोचते-समझते हैं कि इतना ही करने में जीवन का सुख है, ये ही कामनाएँ फिर उनको मृत्युपर्यंत सताती हैं और वे सदा असंतुष्ट ही बने रहते हैं। (क्रमशः)

दैनिक जीवन में प्रत्याहार की साधना

प्रत्याहार पातंजल योगसूत्र में साधना का एक महत्त्वपूर्ण सोपान है। देखा जाए तो योग का वास्तविक शुभारंभ यहीं से होता है; क्योंकि इससे पूर्व के चरण योग की प्राथमिक तैयारी के होते हैं, जिनके अंतर्गत, यम-नियम के माध्यम से अपने विचार एवं व्यवहार की स्थिरता एवं संतुलन को साधा जा रहा होता है, वहीं आसन-प्राणायाम के माध्यम से तन-मन एवं प्राण का स्थिर एवं स्वस्थ आधार तैयार होता है। इस तैयारी के बाद मन को बाहरी विषयों से समेटते हुए उसी एक तत्त्व, उसी परम सत्य, आत्मतत्त्व की ओर अंतर्मुख किया जाता है। मन को अंतर्मुखी बनाने की यह प्रक्रिया ही प्रत्याहार है, जिसके उपरांत धारणा-ध्यान का क्रम आता है।

प्रत्याहार—प्रति एवं आहार शब्द से मिलकर बना हुआ है। प्रति का अर्थ है विपरीत अर्थात इंद्रियों के जो विषय या आहार हैं, इंद्रियों को उनके विपरीत कर देना प्रत्याहार है। इस तरह प्रत्याहार का अर्थ इंद्रियों को विषयों से पीछे खींचना या हटाना भी हुआ। पातंजल योगसूत्र में महर्षि पतंजलि के अनुसार—अपने विषयों के संबंध से रहित होने पर इंद्रियों का जो चित्तस्वरूप में तदाकार-सा हो जाता है, वह प्रत्याहार है। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में—यदि तुम चित्त को विभिन्न आकृतियाँ धारण करने से रोक सको, तभी तुम्हारा मन शांत होगा और इंद्रियाँ भी मन के अनुरूप हो जाएँगी। इसी को प्रत्याहार कहते हैं। इस तरह प्रत्याहार इंद्रियों का विषयों से विमुख होना है, अपने बहिर्मुखी विषय से पीछे हटकर अंतर्मुखी होना है।

युगऋषि पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य के शब्दों में, इंद्रियों का विषयों से अलग होना ही प्रत्याहार है। जिस समय साधक अपने साधनाकाल में इंद्रियों के विषयों का परित्याग कर देता है और चित्त को अपने इष्ट में एकाकार कर देता है, तब उस समय जो चिंतन इंद्रियों के विषयों की तरफ न जाकर चित्त में समाहित हो जाता है, वही प्रत्याहार सिद्धि की पहचान है। यह क्रमिक रूप से साधना-पथ पर आगे बढ़ते हुए घटित होता है।

जब यम, नियम, आसन, प्राणायाम की क्रिया द्वारा अभ्यास करते-करते मन एवं समस्त इंद्रियाँ परिष्कृत हो जाती हैं, तत्पश्चात इंद्रियों की बाह्य वृत्ति को सब ओर से हटाकर व एकत्र करके मन में लय करने के अभ्यास को प्रत्याहार कहा जाता है। जहाँ-जहाँ भी इंद्रियाँ जाती हैं, वहाँ-वहाँ से इंद्रियों को लौटाकर मन को अंतर्मुखी करने का अभ्यास किया जाता है। पूज्य गुरुदेव के शब्दों में, प्रत्याहार की सिद्धि के पश्चात इंद्रियजीत होने के लिए योगी को फिर अन्य किसी साधन की आवश्यकता नहीं रह जाती। महर्षि व्यास के अनुसार, चित्त की एकाग्रता होने पर विषयों की ओर इंद्रियों की जो अप्रवृत्ति है अर्थात विषय संयोग-शून्यता है, वही इंद्रियजय है।

दैनिक जीवन में व्यक्ति जहाँ खड़ा है, वहीं से प्रत्याहार का अभ्यास करते हुए योग-साधना के पथ पर आगे बढ़ सकता है। व्यावहारिक जीवन में उपवास एवं मौन जैसे व्रत प्रत्याहार के ही अभ्यास हैं; क्योंकि तब इंद्रियों को उनके आहार से वंचित किया जाता है। इन व्रत-साधनाओं का उद्देश्य शरीर, मन व इंद्रियों को भूखा मारना नहीं होता, बल्कि गलत अभ्यास के कारण विषयों के प्रति इनकी अत्यधिक संलिप्तता एवं आसक्ति पर अंकुश लगाना होता है, जो गलत आदतों के रूप में, किसी लत की तरह व्यक्ति के जीवन को भीतर से खोखला कर रही होती हैं। अपने विवेक के आधार पर साधक वहिर्मुख इंद्रियों व मन को अनुशासित करता है और अपना नियंत्रण स्थापित करता है।

आज संचार क्रांति के युग में जब भोगवाद की आँधी में व्यक्ति तिनके की भाँति उड़ रहा हो, विषयभोगों में आकंठ संलिप्त हो, ऐसे में प्रत्याहार का महत्त्व बढ़ जाता है। स्मार्ट फोन अपनी कई तरह की उपयोगिता के बावजूद अपने मायावी स्वरूप के कारण एक बहुत बड़ी चुनौती एवं समस्या के रूप में सामने खड़ा है। बच्चा हो या बूढ़ा, युवा हो या किशोर, स्त्री हो या पुरुष सभी इसकी जकड़न में हैं और धड़ल्ले के साथ इसका उपयोग कर रहे हैं। स्थिति यह आ चली है कि अधिकांश व्यक्ति इसके बिना रह नहीं पाते।

इसके अत्यधिक उपयोग के साथ इसका दुरुपयोग जीवन के सुख-शांति एवं संतुलन को छीन रहा है तथा व्यक्ति कई तरह की विकृतियों का शिकार हो रहा है।

अत्यधिक उपयोग के चलते व्यक्ति के स्वास्थ्य पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। लगातार टकटकी लगाकर फोन की स्क्रीन देखते रहने से आँखें शुष्क होने लगती हैं। इससे एक तो व्यक्ति की आँखें कमजोर होती हैं, साथ ही उसकी स्मरणशक्ति एवं एकाग्रता क्षय होने लगते हैं। मन की अस्थिरता एवं चंचलता बढ़ जाती है। जीवन के दैनिक कार्य एवं कर्त्तव्य भी तब सही ढंग से नहीं निभ पाते। आपसी संबंधों में कई तरह की विसंगति का भी यह कारण बनता है। कौन, किस बात के लिए क्यों उखड़ा हुआ है, रूठा हुआ है, इसका भी अनुमान लगाना कठिन हो जाता है और व्यक्ति अनावश्यक तनाव, चिंता एवं दुविधा की अवस्था में रहता है।

आज स्मार्ट फोन की गिरफ्त में आ चुके लोगों को इससे बाहर निकालने के लिए डिजिटल डिटोक्स की बातें हो रही हैं और इसके कई केंद्र खुल चुके हैं। इनमें चल रहे उपचारों को योग की भाषा में प्रत्याहार की प्रक्रिया कह सकते हैं। आप चाहें तो अपने घर पर अपने फोन पर कुछ सप्ताह तक इंटरनेट सुविधा को बंद कर या इसका सीमित उपयोग कर इस तरह का प्रयोग कर सकते हैं। यदि कोई संवाद करना ही हो तो मोबाइल के मैसन्जर के माध्यम से कर सकते हैं या मेल के माध्यम से आवश्यक कार्य निपटा सकते हैं।

स्मार्ट फोन पर बिखराव एवं तनाव का कारण बनने वाले सोशल मीडिया एप्स को सामयिक रूप से निष्क्रिय भी कर सकते हैं। अधिक आवश्यक हो तो अपने कंप्यूटर सिस्टम पर महत्त्वपूर्ण कार्यों को निपटा सकते हैं। आवश्यकता पड़ने पर इन एप्स को अस्थायी रूप से चालू कर सकते हैं और हर पल अनावश्यक सूचनाओं की बाढ़ के दबाव से बच सकते हैं।

प्रत्याहार का यह प्रयोग आपके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत उपयोगी साबित होगा। दो-चार सप्ताह भी यदि इसे आजमाया गया तो मन की खोई लय पुनः वापस आ जाएगी। एकाग्रता एवं स्मरणशक्ति में भी वृद्धि होगी। आपके पास काम करने के लिए अतिरिक्त समय बचेगा, जिसमें आप कई तरह के आवश्यक कार्य निपटा सकेंगे। इसके साथ आपकी कार्य-क्षमता में वृद्धि होगी, प्रतिभा का निखार होगा। सबसे ऊपर आप एक स्वामी की तरह मोबाइल का उपयोग कर रहे होंगे न कि इसके गुलाम की तरह और प्रत्याहार के ऐसे प्रयोग आपको योग-पथ के उच्चतर आयाम की ओर आगे बढ़ा रहे होंगे। ❑

एक बार माता सीता ने हनुमान जी से प्रसन्न होकर उन्हें हीरों का एक हार दिया। कुछ समय पश्चात सीता जी ने देखा कि हनुमान जी ने प्रत्येक हीरे को माला से अलग कर दिया और उन्हें चबा-चबाकर जमीन पर फेंकते जा रहे हैं। यह देख माता सीता को क्रोध आ गया और वे बोलीं—"अरे हनुमान! आखिर तुम रहोगे तो वानर ही। इतना बेशकीमती हार तुमने नोंच-खसोंटकर नष्ट कर दिया।"

यह सुन अश्रुपूरित नेत्रों से हनुमान जी बोले—"माते! मैं तो केवल इन रत्नों को खोलकर यह देखना चाहता था कि इनमें मेरे आराध्य प्रभु राम और माँ सीता बसते हैं अथवा नहीं। आप दोनों के बिना इन पत्थरों का मेरे लिए क्या मोल।" हनुमान जी के भक्तिपूर्ण वचनों को सुनकर सीता जी का हृदय द्रवित हो उठा और उन्होंने अपना वरदहस्त उनके मस्तक पर रख दिया।

जल ही जीवन है

विश्व की पहली सभ्यता सिंधु नदी के किनारे जन्मी थी और सिंधु नदी के सूखने पर मोहनजोदड़ो और हड़प्पा नगरवासी इधर-उधर बसे और हिंदू कहलाए। इतिहास साक्षी है कि निरंतर होते आक्रमण से हमने वास्तव में अपना स्वर्णयुग खो दिया है। आज आजाद भारत जिस विषम सूखे का प्रकोप झेल रहा है तो यह कौन मानेगा कि यह वही धरती है, जहाँ विश्व का पहला मानवनिर्मित जलाशय बनाया गया था। सौराष्ट्र के शकनरेश रुद्रदमन ने सुदेषणा झील बनवाई। इसी गुजरात में जगह-जगह सीढ़ीदार कुएँ बने थे, जिन्हें आज विश्व आश्चर्यजनक रूप से 'स्टेपवेल्स ऑफ गुजरात' के नाम से जानता है।

इसी तरह सारे राजस्थान में लोकहित के लिए बावड़ी बनवाई जाती रही हैं। संपूर्ण दक्षिण भारत में बने बड़े-बड़े जलाशय व जलस्रोत इतने सुनियोजित व सुव्यवस्थित तरीके से बनाए गए थे कि वर्ष भर सिंचाई को भरपूर पानी मिलता रहे और वहीं सामाजिक समन्वय की व्यवस्था भी सुचारु रूप से चलती रहे। दो सदी पहले जब एक अँगरेज इंजीनियर सिंचाई परियोजना शुरू करने को भारत आया तो यहाँ की जल-व्यवस्था में किसी और सुधार की गुंजाइश ही उसे न दिखी।

पिछले दिनों भरतपुर के पास डींग का किला देखा, जो खासतौर से ग्रीष्म ऋतु के लिए बनाया गया था। महल की दो मंजिलें पानी में डूबी रहने के कारण बड़े-बड़े कमरों की दीवारें और फर्श आज भी ऐसे ठंढे थे कि आधुनिक एयर कंडीशनिंग को मात दे दें। पानी की नालियाँ, नहरें, बड़े-बड़े फौवारे जिनसे होकर बहता केवड़े और खसखस का सुगंधित पानी और कमरों में आती सुवासित बयार—ये उस महल की विशेषता हुआ करती थीं। दुर्भाग्यवश आज यह महल अपनी बदहाली की कथा खुद ही बयान कर रहा है।

इंदौर के पास स्थित माण्डू के पहाड़ी टीले पर रानी रूपमती के रूपमहल में वर्षा के जल का ऐसा सुनियोजित प्रबंधन था कि बादलों से गिरा सारा विशुद्ध जल छोटी-छोटी नालियों से होता हुआ महल के नीचे बने तहखानों में जाता था। यह जल हौज में एकत्रित होकर वर्ष भर के लिए काम आता था। बाजबहादुर का दो झीलों के बीच बना जहाजमहल भी ऐसा ही था, जहाँ बारिश का पानी छोटी-छोटी नालियों से बहते हुए ढलाव वाले फर्श से होकर दोनों ओर बनी झीलों में जा गिरता था और फिर इसी पानी को चूने और कोयले से शुद्ध कर साल भर के लिए इंतजाम किया जाता था। आज सपना-सा लगता है ये सब देखना-सुनना और पढ़ना, जब आज राष्ट्र के कितने इलाके बूँद-बूँद को तरस रहे हैं; क्योंकि सत्य तो ये है कि वर्तमान भारत में जल के बिना जीवन जल रहा है।

श्रीमद्भगवद्गीता में एक श्लोक (3/14) है—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥

अर्थात संपूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है। वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ शुभ विहित कर्मों से उत्पन्न होता है। ये था हमारे ऋषियों का सरल, सहज, सात्त्विक चिंतन व विज्ञान। यज्ञ की समिधा, घृत व हवि की आहुतियाँ मंत्रोच्चार के साथ अग्नि को समर्पित की जाएँ तो वे धुआँ बनकर आकाश में बादल बनेंगी और ये बादल वर्षा के रूप में खेतों में बरसकर उत्कृष्ट अन्न उत्पन्न करेंगे। अद्भुत एवं विलक्षण विज्ञान था इस महान संस्कृति के प्रणेताओं का।

आज कैसा दुर्भाग्यपूर्ण एवं अप्रिय सत्य है कि उन अमृतपुत्रों के वंशज हम किस कदर प्रदूषित जहरीली हवा में साँस ले रहे हैं। इस हवा से बने बादल बेमौसम ही बरसते हैं और फसल को नुकसान ही पहुँचाते हैं, कभी बेमौसम ओले बनकर और कभी नवअंकुरित कोमल पत्तों पर मूसलाधार बरस कर। रही-सही कसर ग्लोबल वॉर्मिंग ने पूरी कर दी है। अब सरदियों में भी प्रचुर बरफबारी नहीं होती है। नतीजतन वे ग्लेशियर जो बदरीनाथ मार्ग में आते थे वे अब दिखाई भी नहीं पड़ते। सन् 1985 में बना गंगा

एक्शन प्लान सालों गुजर जाने के बाद भी 'नमामि गंगे' के रूप में बदस्तूर जारी है।

बदरीनाथ, जोशीमठ, नंदप्रयाग, कर्णप्रयाग, रुद्रप्रयाग, देवप्रयाग से जो माँ गंगे अपनी दुर्दशा पर आँसू बहाना शुरू करती है तो प्रयागराज पहुँचते कराह उठती है। आज भी गंगा में अधजली लाशें बेरोक-टोक बहाई जाती हैं। जगजाहिर है कि कान्हा के धाम पहुँचने तक यमुना गंदा बदबूदार नाला भर रह जाती है और श्रद्धालु जन इसी गंदे पानी से आचमन करते हैं।

उत्तराखंड में आज गरमी आते ही सारे जल स्रोत सूख जाते हैं। जगह-जगह बने बाँध नदियों का निर्मल प्रवाह रोक देते हैं। गोमती में मिलने वाली 22 सहायक नदियों में से अधिकतर का अस्तित्व ही विलीन हो चुका है। केदारनाथ में प्रकृति का भयंकर प्रलयकारी रूप हम भूल से चुके हैं।

सत्य तो यह है कि नदियों के निर्विघ्न प्रवाह का दमन जिस परिशिष्ट कुचक्र के संरक्षकों ने बाँध बनाकर किया है वह वास्तव में यही प्रमाणित करता है कि बाँध-निर्माण किसी अन्य विशेष प्रयोजन का तुष्टीकरण मात्र है न कि जनसाधारण के लिए अनिवार्य एवं आवश्यक विकास की संकल्पना। जिस राज्य में लोग प्यासे मर रहे हों वहाँ बाकायदा बाँध बनाकर उद्योगों को, कारखानों को पानी दिया जाता हो, वह भी केवल मोटे मुनाफे के लिए तो यह बात कोई भी समझ सकता है कि जहाँ बूँद-बूँद को लोग तरस रहे हों, वहाँ समय रहते पहले से योजना बनाकर उद्योगपतियों को प्रदान करने वाले पानी का नियोजन क्यों नहीं किया जाता है।

इतिहास साक्षी है कि आज भी दिल्ली में खारी बावली है, हौजकाजी है और हौजखास भी है, अग्रसेन की बावड़ी भी यहीं है, जो किसी समय जल-संरक्षण के स्रोत थे, किंतु क्या कारण है कि आज अपनी दुर्दशा व उपेक्षा पर ये स्वयं ही रो रहे हैं? सच यही है—समूचे भारतवर्ष में जगह-जगह ऐसे कुएँ, बावड़ी व तालाब बिखरे पड़े हैं। क्या आसानी से उनका जीर्णोद्धार नहीं किया जा सकता है?

आज जब जल-संकट से पूरा राष्ट्र ग्रस्त है तो क्या वर्षा के जल को जमा करना अनिवार्य नहीं किया जाना चाहिए? आखिर क्यों हर वर्ष सैकड़ों लीटर शुद्ध बारिश का पानी नालियों व सड़कों पर बहने दिया जाता है और बहता भी ऐसे है कि आम जन सड़कों पर घंटों मीलों लगे जाम से जूझते रहते हैं। गाड़ियों में जलता है सैकड़ों रुपये का तेल और अमूल्य जल निर्बाध बेकार गटर में बह जाता है।

यह वह देश है, जहाँ अभी दो पीढ़ी पहले तक इतनी इनसानियत व उदारता थी कि लोग कुएँ खुदवाते थे। परमार्थ प्याऊ लगवाते थे, घरों के बाहर राहगीरों के लिए घड़ों में शीतल जल भर कर रखते थे। यहाँ तक कि पशुओं, घोड़ों, गायों के लिए पानी के हौद भी बनवाते थे। दुर्भाग्यवश जब से पानी का व्यवसायीकरण हुआ है, तब से प्यासे को पानी देने की हमारी प्राचीन परंपरा ऐसी टूटी कि पानी की प्लास्टिक की बोतल की ही तरह हमारे दिल भी प्लास्टिक के जैसे छोटे हो गए। आज घरों में एसी, कूलर, पंखे, फ्रिज, बाथटब वाले समृद्धजन क्या कभी जान पाएँगे सुदूर बुंदेलखंड, सतारा, लातूर के लोगों की प्यास की पीड़ा, जो भरी दोपहरी में तपती सड़क पर मीलों चलकर एक बरतन पानी पाते हैं।

जिस प्रकार किरणों के अभाव में सूर्य का अस्तित्व नहीं और सूर्य के अभाव में किरणों का अस्तित्व नहीं। उसी प्रकार सुख-शांति के अभाव में संपन्नता की संभावना नहीं और बिना संपन्नता के सुख-शांति का अभाव रहता है।

दिल्ली जैसे महानगर में भी पानी के लिए मचता हाहाकार साक्षात् देखना हो तो कभी उन गरीब बस्तियों में जाइए, जहाँ सप्ताह में केवल एक बार टेंकर आता है। भले ही वे हमारे रिश्ते में कुछ नहीं लगते, किंतु हैं तो हमारे ही राष्ट्र के नागरिक। आधी बालटी पानी के लिए घंटों की जद्दोजहद जो झेलते हैं क्या हम समृद्धजन एकमत होकर उन अपनों के लिए आज और अभी से यह प्रण नहीं कर सकते कि एक बूँद पानी भी कभी नष्ट नहीं होने देंगे और यथाशक्ति पानी का संरक्षण करेंगे?

आज हमारे समृद्ध घरों में नल और फौवारे भले ही नहीं सूखते, किंतु क्या हम आने वाले कल के लिए भी इतने ही निश्चिंत हो सकते हैं? शाश्वत सत्य यही है कि जल ही जीवन है, किंतु उससे भी बड़ा आज का सत्य यही है कि जीवन आज जल रहा है। इस जल रहे जीवन को बुझाने के लिए शीतल जल की जरूरत है और इसके सुनियोजन की गंभीर आवश्यकता भी है। ❑

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी – 1

कामधेनु है गायत्री

(पूर्वार्द्ध)

गायत्री महामंत्र से संबंधित विभिन्न विषयों का प्रतिपादन करने हेतु जितनी विपुल मात्रा में परमपूज्य गुरुदेव ने लिखा-बोला एवं प्रचारित किया है, उतना भारतीय संस्कृति के इतिहास में शायद ही किसी महामानव के द्वारा संपन्न किया गया होगा। उनके विशिष्ट उद्बोधनों की यह एक विशेषता है कि वे गायत्री मंत्र से संबंधित समस्त विषयों का प्रतिपादन अपने श्रोताओं के लिए अत्यंत ही सहजता के साथ कर देते हैं। प्रस्तुत उद्बोधन में भी परमपूज्य गुरुदेव गायत्री महामंत्र के एक ऐसे ही पक्ष को साधकों के लिए उद्घाटित करते नजर आते हैं। वे कहते हैं कि गायत्री मंत्र के अंदर सभी शक्तियाँ समाहित हैं, परंतु उनकी प्राप्ति करने के लिए साधक में प्रचंड पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। इसी को वे एक तरह का कर्मयोग बताते हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥

एक प्रचंड पुरुषार्थ की आवश्यकता

मित्रो, देवियो, भाइयो! कीमती चीजें-बहुमूल्य चीजें प्राप्त करने के लिए समुद्रमंथन जैसा संयुक्त पराक्रम करना पड़ता है। प्रयत्न ही नहीं, प्रचंड पुरुषार्थ करना पड़ता है। कहते हैं कि देवता और असुरों के सहयोग से समुद्रमंथन संपन्न हुआ, जिससे अनेक बहुमूल्य रत्न मिले। प्रस्तुत समय की भी बहुत बड़ी आवश्यकता है अध्यात्म और विज्ञान के बीच ऐसा सहयोग पैदा किया जाए। आग और पानी के बीच फिर से सहयोग पैदा किया जाए और सहयोग पैदा करने के बाद में दुनिया के लिए नई शानदार चीजें पैदा की जाएँ। नई परंपराएँ पैदा की जाएँ।

आजकल हमारा ब्रह्मवर्चस रिसर्च संस्थान इसी काम में लगा हुआ है और आप देख पाएँगे कि शायद नई पीढ़ी के लोग इसी तरह से रिसर्च किया करें, जैसा कि कार्लमार्क्स की बाबत सोचा जाता है। जिसने साम्यवाद के बारे में एक ऐसा फॉर्म्यूला पेश किया कि इससे पहले किसी ने पेश नहीं किया।

मित्रो! रूसो के बारे में कहा जाता है कि डेमोक्रेसी की बाबत उसने ऐसे फॉर्म्यूले पेश किए, जो इससे पहले कभी नहीं पाए गए। जनता पर जनता का राज्य—यह भी कोई बात है? हर आदमी को आर्थिक क्षेत्र में समान अधिकार मिलना चाहिए, भला यह भी कोई बात है? पाँचों उँगलियाँ छोटी-बड़ी होती हैं और हरेक को अलग रहना चाहिए; लेकिन उसके फॉर्म्यूले अपने थे। जिंदगियाँ उसकी कायल हो गईं और कायल होती चली जा रही हैं।

साथियो! हम अपना फॉर्म्यूला पेश करने जा रहे हैं, जो विज्ञान और अध्यात्म को लड़ाई नहीं लड़ने देगा। अब नास्तिक और आस्तिक मिलकर के एक नई दिशा में चलेंगे और दोनों मिलकर के कदम उठाएँगे। आप देखना, अभी हमको मरने में कुछ देर है। मरने से पहले हमारी ब्रह्मवर्चस की रिसर्च का ऐसा शानदार अनुभव होगा, जिसे न केवल आप; वरन सारी दुनिया यह याद करती रहेगी कि एक शानदार आदमी आया था, जो ऐसे फॉर्म्यूले पेश करके गया

है। जिससे विज्ञान और अध्यात्म की लड़ाई खतम हो गई और दोनों ने एकदूसरे के साथ में अपने को ऑपरेट करना शुरू कर दिया। यह धर्म की बात है।

मित्रो! आपसे यह मैं किसकी बात कह रहा हूँ? गायत्री की प्रैक्टिस की बात कह रहा हूँ। हमने गायत्री की प्रैक्टिस की है। छह घंटे रोज के हिसाब से हमने मुद्दतों उपासना की है। चौबीस साल तक जौ की रोटी और छाछ के ऊपर हम निर्भर रहे हैं। उसके फायदे आपको दिखाई पड़ते हैं कि नहीं दिखाई पड़ते। आपको दिखने चाहिए। हमने सत्तर साल की उम्र में इस शरीर से बिना स्टेनो की मदद के, बिना टाइपिस्ट की मदद के, बिना सेक्रेटरी की मदद के, बिना पी०ए० की मदद के इतना काम किया है, जो एक आदमी नहीं कर सकता। महाभारत के बारे में बताया गया है कि व्यास जी बोलते गए थे और गणेश जी स्टेनो का काम करते थे। एक अनुपम चीज लिखी गई, जिसको 'महाभारत' कहा जाता है। हमने उन सारे-के-सारे ग्रंथों को अपनी जिंदगी में इन्हीं उँगलियों के सहारे, इसी पेन-कलम के सहारे लिखकर के रख दिया।

कार्य में सफलता के तरीके

मित्रो! किसी भी कार्य को पूर्णता तक पहुँचाने का एक तरीका है। काम की क्वालिटी बढ़ाने का तरीका यह नहीं है कि आप परिश्रम करते हैं कि नहीं, परिश्रम ही काफी नहीं है। परिश्रम के साथ परिश्रम को हम कर्मयुक्त बना देंगे, तो हमारे लिए भौतिक और आध्यात्मिक हर तरह की उन्नति का दरवाजा खुल सकता है, अगर उसमें तीन बातें जुड़ी हुई हों तब—एक तो काम में हमारी कितनी ज्यादा दिलचस्पी है और दूसरी कितनी तन्मयता के साथ करते हैं। इसको हम यह मानकर चलें कि काम और हम दोनों एक ही हो गए हैं।

तीसरा—काम के प्रति हमारे मन में जिम्मेदारी का भाव हो। यह भाव हो कि इसका सामाजिक जीवन से ताल्लुक है। हम एक इकाई हैं, एक घटक हैं। यह कार्य हमारे लिए और सारे समाज के लिए लाभदायक हो सकता है। हम एक परंपरा बना सकते हैं, जो हमारे बच्चों में चली आएगी और सबमें चली आएगी। इसलिए काम को हमें उत्तरदायित्व मानकर करना चाहिए, ईमानदारी से करना चाहिए। अगर हम अपने कार्यों को इस तरीके से करेंगे, तो कहीं भी, जो भी काम हमारे हाथों में सौंपे जाएँगे, हम उन्नतिशील होते जाएँगे और आगे बढ़ते हुए चले जाएँगे।

मित्रो! साधना से सिद्धि मिलती है, जीवन में चमत्कार आते हैं, भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति होती है। यह इस बात पर निर्भर है कि हम जीवन को किस तरह से जीते हैं? कर्म करने की कुशलता ही योग है। कर्मयोग का यह मंत्र मुझे 15 वर्ष की उम्र में गांधी जी से मिला। उन्होंने मुझे यह बताया कि यहाँ हम आदमियों को यह पढ़ाते हैं कि उनको जो भी काम सौंपा जाएगा, चाहे वह लकड़ी चीरने का हो, या मल-मूत्र साफ करने का हो, आदमी इस ढंग से करेगा कि उसका स्वभाव, उसके काम करने का क्रम, उसके सोचने का तरीका, उसका अभ्यास ऐसा बन जाएगा कि जो भी काम करेगा, उसमें उन्नति होती चली जाएगी।

गांधी जी ने जो कहा, मैंने उसी आधार पर अपनी उन्नति की है। जिंदगी में जो भी काम मेरे जिम्मे आए या सौंपे गए, उनको मैंने इतनी तन्मयता से, इतनी मुस्तैदी से, इतनी ईमानदारी से पूरा किया कि वे काम मेरे लिए वरदान होते चले गए। वही काम मेरे लिए योगाभ्यास होते चले गए। वही काम मुझे ऊँचा उठाते हुए चले गए।

कर्मयोग का मंत्र

मित्रो! मैंने समझ लिया कि गांधी जी ने मुझे जो सिखाया है, वह कोई जादू तो नहीं है। जादू किसे कहते हैं? इस हाथ दे, उस हाथ ले। मित्रो! ऐसा नहीं हो सकता। हम पेड़ लगाते हैं, तो फल लगने में समय लग जाता है। नहीं साहब! हमें फल चाहिए। नहीं बेटे! ऐसा नहीं हो सकता। बच्चे से हमें जवान बना दीजिए। बच्चा कह रहा है—पिताजी से कि हमको जवान बना दीजिए। हाँ बेटे, जवान बना देंगे। तो हमको अभी जवान बना दीजिए। बेटे, अभी तुझे कैसे जवान बना देंगे। वक्त आएगा तब बनाएँगे? नहीं साहब! हमें तो अभी बना दीजिए। चलो अभी बना देते हैं। बस, चार आने की मूँछें लगा दीं, जा तू हो गया जवान। अहाऽऽ—अभी तो नहीं हुआ जवान। आपने तो नकली मूँछें लगा दीं। बेटे, जल्दी में तो ऐसा ही हो सकता है। समय पर सारी चीजें आधारित हैं। समय के आधार पर आदमी अपनी वृत्तियों को, अपनी प्रवृत्तियों को, अपनी आदतों को, अपने स्वभाव को बदलता चला जाता है। परिष्कृत या विकृत होता चला जाता है।

मित्रो! गांधी जी के कर्मयोग के मंत्र को मैंने अपने जीवन से इस तरह से बाँध रखा है कि मैं रोजाना उनको याद

कर लेता हूँ। गायत्री मंत्र तो मैं किसी भी समय कर सकता हूँ, पर गांधी जी का वह मंत्र, जिसे मैं कर्मयोग का मंत्र कहता हूँ, चमत्कार का मंत्र कहता हूँ, प्रसन्नता का मंत्र कहता हूँ, योग का मंत्र कहता हूँ, उसे गिरह से बाँधकर रखा है और उससे मुझे हर काम में सफलता मिलती हुई चली गई।

मंत्रों ने जो मुझे सबसे बड़े फल दिए हैं, वही कर्मयोग ने दिया है। एक घंटा रोज टहलने की मैंने आदत को बनाकर रखा है। इस एक घंटे रोज टहलने की आदत में मैंने यह नियम बनाकर रखा है कि मैं अध्ययन करूँगा। मेरे पढ़ने का वही समय है। एक घंटे रोज टहलता रहता हूँ और किताबें पढ़ता रहता हूँ। 40 पन्ने रोज पढ़ लेता हूँ, महीने भर में होता है—1250 पन्ने और साल भर में 14500 पन्ने। इसका अर्थ होता है कि जब मैं घूमता रहता हूँ, सफर करता रहता हूँ, उसमें मैं किताब लेकर सफर करता हूँ। अब तक मैंने लाखों पुस्तकें पढ़ ली हैं। इतना मैंने अध्ययन किया है। लोग कहते हैं कि यह चमत्कार है। गुरुजी जो लिखते हैं, तो मालूम पड़ता है कि कितने बड़े अध्ययनशील आदमी हैं। लोग मुझे चलता-फिरता एनसाइक्लोपीडिया कहते हैं। भिन्न-भिन्न विषयों पर इतना ज्यादा गहरा ज्ञान है कि आपको जब कभी भी बहस करना हो, तो मुझसे किसी भी विषय पर आप बहस कर सकते हैं।

मित्रो! यह क्या है? यह सिर्फ एक घंटे अध्ययन का चमत्कार है और इसके साथ में जुड़ा हुआ मनोयोग, इसके साथ में दिलचस्पी, इसके साथ में तन्मयता, साथ में जिम्मेदारी है। इस एक घंटे ने मुझे विद्वान बना दिया। मेरे क्रम में, मेरे भजन में बेटे, चमत्कार पैदा हो गया, जादू पैदा हो गया। क्यों? क्योंकि जब मैंने भजन किया तब पूरी वृत्ति के साथ, पूरी तन्मयता के साथ, पूरी ईमानदारी के साथ इस तरीके से किया कि बस, वह भजन दिखाई पड़ा और मैं दिखाई पड़ा, कोई दूसरा नहीं दिखाई पड़ा।

जब मैं लेख लिखता हूँ, तो इतना तन्मय होकर कि आप कभी आना और पैर छूना और कहना—गुरुजी! प्रणाम। हाँ बेटे अच्छे हो, कहो भाई लड़के! अच्छे हो। ठीक से पढ़ाई करना, अच्छा जाओ। यह क्रम चलता रहता है। मैं लिखता हुआ चला जाता हूँ और जीभ बोलती रहती है। किससे बोल रहा हूँ, कौन पैर छू गया, किसने पैर छुए? सैकड़ों आदमी आते हैं। गुरुजी! हमारी प्रार्थना सुनना। बेटे, इस वक्त तो सुन नहीं सकता। यह कौन कह रहा है? यह जीभ कहती रहती है और मेरा हाथ लेख लिखता हुआ चला जाता है। इतना बारीक और इतना अध्ययन से भरा हुआ लेख लिखता रहता हूँ।

कार्य में तन्मयता लाएँ

मित्रो! यह क्या है? यह जादू है, चमत्कार है। गुरुजी! आपके लेख बहुत अच्छे होते हैं। हाँ बेटे, हमारे लेख बहुत अच्छे होते हैं और होने भी चाहिए। गुरुजी! आपके व्याख्यान में बड़ा मजा आता है और आपकी व्याख्या बड़ी तीखी और पैनी होती है। हाँ बेटे, तेरे व्याख्यान भी उतने तीखे हो सकते हैं और पैने हो सकते हैं, अगर तू अपने आप को तन्मय कर डाले तब।

तन्मयता अर्थात अपने काम में या काम के प्रति अपने आप को खपा देना और काम में अपने आप को घुला देना। यह मंत्र मुझे पूजा में सफलता दे गया, विद्यार्थी जीवन में सफलता दे गया, सामाजिक जीवन में सफलता दे गया, पुस्तकों के लेखन में सफलता दे गया। जो भी आप मेरी सफलताएँ जानते हैं, उन सब कामों में जिस भी काम को मैं शुरू करता हूँ, उसमें इस कदर खो जाता हूँ कि मुझे पता नहीं चलता। मेरा शारीरिक श्रम, मेरा सारा मनोबल, मेरी अंत:भावनाएँ—तीनों के समन्वय होने से जो भी काम हाथ में लेता हूँ, वे चमत्कार हो जाते हैं, जादू हो जाते हैं। इसका मतलब है कि भजन करने के बाद में, साधना करने के बाद में, गायत्री मंत्र की साधना के बाद में कर्मयोग की साधना करता हूँ। कर्मयोग की जो साधना गांधी जी ने बताई, उसे मैं करता हुआ चला गया।

मित्रो! अब मैं महात्मा गांधी बन गया हूँ। अब मेरी मनोकामना पूरी हुई। जब मैं हिंदुस्तान में जहाँ कहीं भी जाता हूँ, अफ्रीका जाता हूँ, जहाँ कहीं भी गया, हजारों आदमियों को उमड़ते हुए देखा। जब मैं अफ्रीका गया, मुझे केन्या जाना था, तो वहाँ तंजानिया वालों ने रोक लिया और कहा कि नहीं साहब! हम आपको नहीं जाने देंगे। हम आपको पानी के जहाज से उतार लेंगे और फिर आपको केन्या भेज देंगे।

इस बीच हवाई जहाज से कितने टेलीग्राम आते रहे। वे कहते कि इतने टेलीग्राम तो किसी के नहीं आते। ये कौन हैं? जिनके इतने टेलीग्राम रोज आ जाते हैं। उन्होंने मुझे तंजानिया में रोक लिया। दारेस्लाम पर मैंने देखा कि दो-ढाई

हजार इंडियन्स खड़े हुए थे; जबकि वहाँ मुश्किल से पाँच-सात हजार इंडियन्स रहते थे। वे कहाँ से आ गए? मैंने देखा कि मैं तो महात्मा गांधी हो गया। मैंने महात्मा गांधी को देखा था। जब वे इंग्लैंड में राउंड टेबल कॉन्फ्रेंस में गए थे, तो उनका स्वागत करने के लिए दो-ढाई हजार आदमी खड़े थे। दारेस्लाम में मैं महात्मा गांधी हो गया।

मित्रो! दारेस्लाम में मैं जहाँ भी गया, दो हजार से अधिक आदमी मेरी बात सुनने के लिए आए। जब मैंने लोगों से अपील की, उन लोगों ने मेरा स्वागत किया। जनता से जिस काम के लिए कहा, जनता ने मेरी बात को माना। जब मैंने पैसा माँगा, तो मेरे पास पैसा आ गया। महात्मा बनने का मंत्र, सिद्धि और महात्मा गांधी का चमत्कार देखिए, यह सब मैं कहाँ से सीख करके आया।

इसको मैं कर्मयोग कहता हूँ और आपको सिखाता हूँ। इसको मैं प्रज्ञा कहता हूँ, लोकव्रत कहता हूँ। लोक व्यवहार को जीवन-संपदा के तरीके से उपभोग करना, यद्यपि आप मानते तो हैं, पर इस्तेमाल करना नहीं जानते। आप इस्तेमाल कीजिए, अक्ल का इस्तेमाल कीजिए, भावना का इस्तेमाल कीजिए। आप तो इस्तेमाल नहीं करते, केवल माँगते जाते हैं, पैसा दीजिए। हम आपको पैसा देंगे, तो आप क्या करेंगे? इस्तेमाल तो आप करेंगे नहीं। हम आपकी सेहत अच्छी बना देंगे, पर आप सेहत का करेंगे क्या? यह तो बता दीजिए। आपको तो उपयोग करना आता नहीं। हमें जो चीजें मिली हुईं, उनको किस तरीके से ठीक से उपयोग कर सकते हैं और कितने समृद्ध बन सकते हैं, यही जीवन-साधना है।

गायत्री से प्रतिष्ठा प्राप्ति ऐसे करें

मित्रो! हमने अपनी जिंदगी को जलती हुई जिंदगी नहीं, सुलगती हुई जिंदगी नहीं, चुभन देती हुई जिंदगी नहीं, काली जिंदगी नहीं, भारभूत जिंदगी नहीं, वरन शानदार, एकांत और शांतिपूर्ण, शक्ति-सामर्थ्यपूर्ण, समृद्धशाली जिंदगी जिया है। आद्यशंकराचार्य 32 वर्ष जिये थे और उन्होंने थोड़ी उम्र में न जाने कितने काम कर लिए और हमने अपनी 71 वर्ष की उम्र में न जाने कितने काम कर लिए। उपासना-साधना की बाबत बताया, अक्ल की बाबत बताया, शक्ति-सामर्थ्य की बाबत बताया, समृद्धि की बाबत बताया। अब और क्या बताऊँ, बताइए? अथर्ववेद की बात बताऊँ या आपकी इच्छाओं की बात बताऊँ। चलिए आपकी इच्छा के मुताबिक बात बताता हूँ। अथर्ववेद को जाने दीजिए। आप क्या चाहते हैं? आदमी दूसरी चीज क्या चाहता है? आदमी दूसरी चीज चाहता है—इज्जत। हमको इज्जत मिलनी चाहिए। आप इज्जत चाहते हैं? हाँ साहब! हम जो ठाठ-बाट बनाते हैं, लड़के-लड़कियों की शादियाँ करते हैं। एम०एल०ए० के चुनाव में खड़े होते हैं। यह सब काम इसलिए करते हैं कि दूसरों की आँखों में हमारी इज्जत ज्यादा हो।

मित्रो! जिसको लोग भौतिक लाभ कहते हैं और इसके लिए न जाने कितना पैसा फूँकते हैं और न जाने कितना खरच करते हैं। न जाने कितना ढोंग बनाते रहते हैं, कितने तमाशे बनाते रहते हैं। औरतें जेवर पहनती रहती हैं और ऐसे-ऐसे कपड़े पहनती रहती हैं। ऐसे-ऐसे विन्यास बनाती रहती हैं, जिनको देखकर हँसी आती है।

ऐसा इसलिए करती हैं कि दूसरों की आँखों में उनकी इज्जत बढ़े कि यह लड़की बड़ी खूबसूरत है, बड़ी नौजवान है। बहुत अच्छी मालूम पड़ती है। बड़े अमीर घर की है। इसके लिए न जाने क्या-क्या पहनती हैं और न जाने क्या-से-क्या करती हैं? इज्जत के बारे में यह बात कल हमने बताई थी। आदमी को इज्जत दिलाने में भी हम शानदार काम करते हैं। अभी हमको ग्यारह वर्ष बाद लोगों से मिलना हुआ है, बाहर निकलना हुआ है। सबसे पहले अहमदाबाद जाना हुआ है। अहमदाबाद की, गुजरात की जनता को मालूम हुआ कि आचार्य जी आए हुए हैं, तो रेलवे स्टेशन पर पचास हजार से ज्यादा आदमी इकट्ठे हो गए। रेलवे विभाग को कंट्रोल करना नामुमकिन हो गया। पुलिस के 40-50 सिपाही थे। उन्हें कंट्रोल करने में दिक्कत हुई। लाठी चार्ज कर नहीं सकते थे, गोली चला नहीं सकते थे। अश्रु गैस फेंक नहीं सकते थे।

मित्रो! परिस्थितियाँ ऐसी हो गईं कि दो घंटे की जद्दोजहद होने पर भी कोई तरीका नहीं निकल सका। लोग इतने भावुक थे। भावनाओं से भरी हुई जनता, उमड़ती हुई जनता, भावुक जनता यही चाह रही थी कि पहले हमको आचार्य जी को माला पहनानी चाहिए। पहले हमको पैर छूने चाहिए। इसी जद्दोजहद में परिस्थिति ऐसी हो गई कि कोई रास्ता निकल नहीं पाया। फिर हमको पिछले वाले रास्ते से निकलकर भागना पड़ा। सारे-का-सारा कार्यक्रम रद्द करना पड़ा। जनता का भावावेश रुका नहीं। क्या करते हैं? हम जनता की भावनाओं की इज्जत करते हैं।

इज्जत उसे कहते हैं—जिसके हाथ में सहयोग जुड़ा होता है। आपने अगर जेब काट करके इज्जत वसूल की है, चमचों की मदत से इज्जत वसूल की है और अपने पैसे देकर के इज्जत वसूल की है, तो हम नहीं कह सकते; लेकिन आपने अगर कीमत देकर के इज्जत खरीदी नहीं है, तो उसके साथ में एक और चीज जुड़ी होगी। आप ध्यान रखना, उसके साथ में सहयोग भी जुड़ा होगा। सम्मान मिलेगा, तो सहयोग भी मिलेगा, आप ध्यान रखिए।

मित्रो! हमको सम्मान मिला है, तब सहयोग मिला है। गांधी जी को सम्मान मिला है, तो साथ ही उनको सहयोग भी मिला था। भगवान बुद्ध को सम्मान मिला था, तो उन्हें सहयोग भी मिला था। ईसा को सम्मान मिला, तो सहयोग भी मिला। स्वामी विवेकानंद को सम्मान मिला था, तो सहयोग भी मिला था। जनता ने हमको भरपूर सहयोग दिया है और जनता ने हमको भरपूर सम्मान दिया है।

क्यों साहब! आपके पास क्या चीज है? हमारे पास वह चीज है—जिसको मैं गायत्री मंत्र कहता हूँ। आप सही तरीके से उसकी उपासना करना नहीं जानते। आप में एक कमी है कि आपको सही तरीका नहीं बताया गया है। जो मेरे पास है, वह आपको नहीं मालूम है। मैं आपको सही तरीका बताने के लिए ही आया हूँ। वे तरीके क्या हैं? जिससे कि आप में से हरेक आदमी वही फायदे उठा सकता है, जो फायदे हमने उठाए। हमने भरपूर इज्जत पाई है और जनता का भरपूर सहयोग पाया है।

मित्रो! गांधी जी ने भरपूर इज्जत पाई थी और भरपूर सहयोग पाया था। उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा के लिए, चरखे के लिए करोड़ों रुपये माँगे, तो जनता ने करोड़ों दिए। उन्होंने हिंदुस्तान की आजादी के लिए करोड़ों माँगे, तो लोगों ने करोड़ों दिए। दूसरे फंड के लिए करोड़ों दिए और गांधी जब शहीद हो गए, तो उनकी स्मृति के लिए जनता ने सौ करोड़ दिए। आप समझते ही नहीं हैं। आप तो बार-बार शिकायत करते हैं कि हमारी बीबी हमको सहयोग नहीं देती। हमारे बच्चे हमारा सहयोग नहीं करते। हमारे पड़ोसी हमारा सहयोग नहीं करते। आपके नौकर आपका सहयोग नहीं करते। आपको कोई सहयोग नहीं करता।

[क्रमशः समापन अगले अंक में]

एक व्यक्ति को किसी ने बोला कि गणेश जी की पूजा करने से धन-धान्य की वृद्धि होती है। उसने अगले ही दिन अपने घर में गणेश जी की मूर्ति स्थापित की और उनकी पूजा-अर्चना आरंभ कर दी। वह नित्य उनकी मूर्ति के समक्ष घंटे-घड़ियाल बजाता और भाँति-भाँति के स्तोत्रों का पाठ करता। वर्षों बीत गए, पर उसकी आर्थिक स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ।

एक दिन क्रोध में आकर उसने गणेश जी की मूर्ति पूजास्थली से हटाकर माँ लक्ष्मी की प्रतिमा स्थापित कर दी। अगले दिन पूजा के क्रम में उसने अगरबत्ती जलाई तो उसके मन में विचार उठा कि इसका धुआँ गणेश जी की मूर्ति तक नहीं पहुँचने देगा। उसने रूई की दो गोलियाँ बनाकर गणेश जी की मूर्ति की नाक में लगा दीं। अब गणेश जी की प्रतिमा हँसने लगी। वह घबराया तो मूर्ति बोली—"जब तक तू हमें जड़ मानता रहा, हम भी तेरे जड़ भगवान रहे, जिस दिन तूने हममें चेतना की अभिव्यक्ति की, उस दिन हमें तुझसे मिलने आना पड़ा।"

भगवान मृत्युंजय के अनुग्रह का अधिकारी बना विश्वविद्यालय

वर्तमान समय मानवता के लिए गंभीर चुनौतियों का समय है। आस्था संकट, चारित्रिक पतन, परमेश्वर के कर्मफल पर पूर्ण अविश्वास—इस तरह के न जाने कितने व्यक्तिगत से लेकर सामाजिक संकट, मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति, दोनों के अस्तित्व के ऊपर एक प्रश्नचिह्न लगाते दिखाई पड़ते हैं।

ऐसे समयों में आवश्यकता पड़ती है कि संस्कृति की रक्षा के लिए स्थापित एवं प्रतिष्ठित देव संस्कृति विश्वविद्यालय के द्वारा कुछ ऐसी गतिविधियों एवं घटनाक्रमों को अंजाम दिया जाए जो समाज को एक नई, नूतन व सकारात्मक दिशा दे पाने में एक सशक्त भूमिका का निर्वहन कर सकें।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने अपने प्रति अभिव्यक्त इन अपेक्षाओं को एक चुनौती के रूप में स्वीकारा है और समय-समय पर समाज को एक नई दिशा देने का प्रचंड पुरुषार्थ संपन्न भी कर दिखाया है। वर्तमान में प्रस्तुत सामाजिक चुनौतियों में से एक गंभीर चुनौती पर्यावरण प्रदूषण एवं उससे संबंधित दुष्प्रभावों की है।

पर्यावरण प्रदूषण का संकट संपूर्ण मानवता का संकट है। यदि हवा साँस लेने लायक न रह जाए, पानी पीने लायक न रह जाए एवं धरती अन्न उपजाने से मना कर दे तो उसका दुष्प्रभाव निश्चित रूप से संपूर्ण मनुष्य जाति के अस्तित्व पर पड़ने वाला है। ऐसा ही एक गंभीर दुष्प्रभाव भूमि कुपोषण का भी है, जिसके चलते भारत की 30 प्रतिशत से ज्यादा भूमि आज बंजर हो चली है। इस समस्या का सम्यक समाधान आज के समय की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता बन गया है।

इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा विगत दिनों एक राष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन विश्वविद्यालय परिसर में किया गया। इस कार्यशाला में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने का उत्साह लोगों में इतना था कि भारतवर्ष से 400 से ज्यादा वैज्ञानिक इसमें प्रतिभाग करने हरिद्वार पहुँचे।

इस कार्यशाला का शुभारंभ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यवाह श्री भगैया जी एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी द्वारा किया गया। इस कार्यशाला का उद्घाटन करते हुए भगैया जी ने गायत्री परिवार की भूरि-भूरि प्रशंसा की और यह कहा कि इतनी चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में यह मात्र देव संस्कृति विश्वविद्यालय के साहसिक प्रयास का परिणाम है कि संपूर्ण भारत से अनेक वैज्ञानिक इस विषय पर मंथन करने के लिए यहाँ एकत्रित हुए हैं।

इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने कहा कि भारत एक ग्रामप्रधान देश है और परमपूज्य गुरुदेव ने संपूर्ण विकास, टिकाऊ विकास एवं आदर्श ग्राम का चिंतन पूरे विश्व को तब प्रदान किया था, जब इस ओर किसी का ध्यान भी जाता प्रतीत न होता था। उन्होंने स्वस्थ, स्वच्छ, शिक्षित, स्वावलंबी, व्यसनमुक्त, संस्कारयुक्त एवं सहकारयुक्त गाँवों के विकास पर जोर देने का आवाहन सभी से किया। साथ ही सबको यह भी अवगत कराया कि यह वर्ष शांतिकुंज का स्वर्ण जयंती वर्ष भी है और इस अवसर पर सभी के सम्मिलित सहयोग से यदि धरती माँ पुनः पोषित हो जाती हैं तो यह इस वर्ष का सर्वोपरि पुरुषार्थ होगा।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति की उपस्थिति जीवंतता के साथ अनुभव की जा सकती है। इसी भाव को पुनर्जीवित करते हुए विश्वविद्यालय परिसर में श्रद्धेय कुलाधिपति जी एवं श्रद्धेया जीजी के द्वारा विश्वशांति की भावना के साथ शिवाभिषेक के क्रम को संपन्न कराया गया। इस अवसर पर उपस्थिति विद्वान आचार्यों ने रुद्राष्टकम्, रुद्राभिषेक के वैदिक मंत्रों के साथ भगवान महादेव का महाभिषेक संपन्न कराया। विभिन्न वैदिक ऋचाओं को शंख-मृदंग आदि वाद्ययंत्रों के माध्यम से जब विश्वविद्यालय के संगीतज्ञों ने प्रस्तुत किया तो उसने एक ऐसे आंतरिक भाव को जन्म दिया जो लोगों को अंदर से उल्लसित करने वाला था। श्रद्धेय कुलाधिपति जी ने इसे एक कल्याणकारी अवसर बताया।

महाशिवरात्रि के इस पावन पर्व के सुयोग पर प्रख्यात संगीतज्ञ एवं गायक, पद्मश्री श्री कैलाश खेर जी देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रांगण में पहुँचे और उन्होंने भगवान शिव से संबंधित अपने समस्त गीतों की अभिव्यक्ति करके सभी उपस्थित श्रोताओं को मंत्रमुग्ध होने पर विवश कर दिया।

इस अवसर पर श्रद्धेया शैल जीजी ने इस पर्व को अपने अंदर के शिव को जगाने का पर्व बताया। श्री कैलाश खेर जी और उनके साथ देव संस्कृति विश्वविद्यालय पधारे उनके सहयोगी गणों ने विश्वविद्यालय को एक दैवी प्रकाश का स्रोत बताया और यह कहा कि जिस तरह की अनुभूति उन्हें देव संस्कृति विश्वविद्यालय के परिसर में हुई है, उसे उनके लिए शब्दों में अभिव्यक्त कर पाना संभव न हो सकेगा।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में गणमान्य अतिथियों के निरंतर आगमन का क्रम अनवरत चलता रहता है। इसी क्रम में भारतीय लोकसभा के अध्यक्ष माननीय श्री ओम बिड़ला जी सपरिवार देव संस्कृति विश्वविद्यालय पहुँचे। उन्होंने यहाँ पहुँचने पर शांतिकुंज एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय को एक जाग्रत तीर्थ बताया और स्वयं के यहाँ पहुँचने को एक ईश्वरीय संयोग घोषित किया।

इस अवसर पर उन्होंने विश्वविद्यालय के विभिन्न प्रकल्पों का अवलोकन देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी के साथ किया और उसके उपरांत शांतिकुंज पहुँचकर श्रद्धेय कुलाधिपति जी एवं श्रद्धेया जीजी के साथ भेंटवार्त्ता संपन्न की। श्रद्धेयद्वय ने माननीय श्री बिड़ला जी को परमपूज्य गुरुदेव का साहित्य भेंट कर सम्मानित भी किया। ❑

प्रख्यात शिक्षाविद् और समाज सुधारक अश्विनी कुमार दत्त पढ़ाई में कुशाग्र थे। अपनी मेहनत के बूते वे 14 वर्ष की आयु में ही इंटरमीडियट की कक्षा में पहुँच गए। वहाँ उन्हें पता चला कि विश्वविद्यालय में उच्च अध्ययन के लिए न्यूनतम आयु सीमा 16 वर्ष है। उन्होंने अपने मित्रों से परामर्श किया तो उन्होंने सलाह दी कि गलत आयु लिखकर परीक्षा में बैठ जाएँ। उन्होंने ऐसा ही किया और उनका चयन विश्वविद्यालय में हो गया, परंतु उन्हें बाद में अपने इस कृत्य पर ग्लानि होने लगी।

उनके संकायाध्यक्ष ने उनकी ईमानदारी की प्रशंसा कर उन्हें इस विषय पर अधिक चिंता न करने को कहा। उन्हें तब भी शांति न मिली तो वे कुलसचिव से मिले। वहाँ से भी उन्हें वही जवाब मिला। तब प्रायश्चितस्वरूप उन्होंने 2 वर्ष तक अपनी पढ़ाई बंद रखी और जब उनकी आयु निर्धारित मानकों के अनुरूप हो गई तो उन्होंने अध्ययन पुनः आरंभ किया। उस विषय पर पूछने पर वे बोले—"सम्मान के क्षेत्र में काम करने वालों का आचरण पारदर्शी होना चाहिए। बेईमानी से प्राप्त योग्यता किसी को सन्मार्ग के लिए प्रेरित नहीं कर सकती।"

अपनों से अपनी बात

श्रद्धा के जागरण का पर्व

शांतिकुंज की स्थापना के 50 वें वर्ष की यह गायत्री जयंती, अपने साथ अनेकों नूतन एवं पवित्र संभावनाओं को लेकर आई है। इस अवसर को हम उस शक्ति को समर्पित अवसर कह सकते हैं, जो समस्त आध्यात्मिक विभूतियों की प्राप्ति का आधार है। व्यक्ति को लौकिक शक्तियाँ या लौकिक उपलब्धियाँ पद, पैसे, प्रतिष्ठा के रूप में मिल जाती हैं। आध्यात्मिक शक्तियाँ इन उपलब्धियों से न केवल भिन्न होती हैं, बल्कि उनके पीछे का, उनकी प्राप्ति का आधार भी भिन्न होता है।

अध्यात्म के क्षेत्र में जितनी भी शक्तियाँ, जितनी भी ताकतें हैं, उन सबका आधार एक ही शक्ति है और उसका नाम है—श्रद्धा। इसी कारण लोग भले ही मंत्र एक ही जैसा जपते हों, उनके साधना के तरीके भी एक जैसे हों, तब भी उनको मिलने वाले अनुग्रह, उपहार और साधना के परिणाम भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। एक ही गुरु से एक ही शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी, दोनों शिष्यों को मिलने वाली अनुकंपाएँ भिन्न-भिन्न हो जाती हैं।

भगवान बुद्ध के साथ जीवन गुजारने वाले आनंद को वो नहीं मिल पाता, जो उनको क्षण भर निहारने वाले मक्खलिगोशाल को मिल जाता है। द्रोणाचार्य से शिक्षा लेने के बाद भी दुर्योधन खाली हाथ रह जाता है; जबकि अर्जुन एवं एकलव्य धन्य होकर के लौटते हैं। यदि इन परिणामों की भिन्नता की समीक्षा की जाए तो ये महसूस होता है कि यह अंतर श्रद्धा का है। इसके पीछे कारण यह नहीं कि गुरु ने भेदभाव किया, बल्कि कारण यह है कि साधक की, शिष्य की श्रद्धा अलग-अलग हो जाती है। श्रद्धा इस बात से तय होती है कि हमने चाहा क्या और माँगा क्या?

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—**'श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥'** अर्थात जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही बन जाता है। यदि हम गायत्री की शिक्षाओं को आत्मसात् करने के लिए निकले हैं, परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी की शिक्षाओं को अपने जीवन का, व्यक्तित्व का आधार बनाने के लिए निकले हैं तो उनके प्रति हमारी श्रद्धा आवश्यक हो जाती है। जिस विषय में विशेषज्ञता अर्जित करना हो, उस विषय के पाठ्यक्रम को पढ़ना आवश्यक होता है। इसी तरह यदि अध्यात्म की महान शक्तियों का अर्जन करना हो तो उनको बिना श्रद्धा, समर्पण, विश्वास के अर्जित कर पाना कठिन ही नहीं, असंभव कहा जा सकता है।

सत्य यह ही है कि आध्यात्मिक जगत् में, अलौकिक जगत् में, सूक्ष्मजगत् में शक्ति की प्राप्ति का आधार एक ही है और वह है श्रद्धा। श्रद्धा उस ताकत का नाम है, जो यदि इनसान के पास हो तो उसके अंदर इतनी ताकत भर देती है कि ब्रह्मांड की सारी ताकतें एक तरफ और श्रद्धा की ताकत एक तरफ। प्रह्लाद की श्रद्धा की ही यह ताकत थी कि भगवान को खंभा तोड़कर बाहर आने को विवश कर दिया था। एकलव्य की श्रद्धा ने द्रोणाचार्य की मिट्टी की प्रतिमा में जीवन भर दिया था। स्वामी रामकृष्ण परमहंस की श्रद्धा ने पत्थर की मूर्ति को माँ काली की जीवंत शक्ति में बदल दिया था।

कहने की दृष्टि से कहा जाए कि समस्त शक्तियों का मूल आधार श्रद्धा है तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। साधक की साधना का आधार श्रद्धा है; भक्त की भक्ति का आधार श्रद्धा है; अवतार के अवतरण का आधार श्रद्धा है; संत के समर्पण का आधार श्रद्धा है; यहाँ तक कि भगवान की भगवत्ता का आधार भी श्रद्धा है। श्रद्धा यदि अटूट है तो सारे चमत्कार घटते हैं और यदि श्रद्धा न हो तो बड़े-से-बड़े प्रयास भी व्यर्थ ही चले जाते हैं। श्रद्धा आ जाती है तो रीछ-वानरों में पत्थर को पानी पर तैराने की ताकत दे देती है।

श्रद्धा आ जाती है तो ग्वाल-बालों में गोवर्धन उठाने की ताकत दे देती है, श्रद्धा आ जाती है तो गिलहरी में समुद्र को सुखाने की ताकत दे देती है और श्रद्धा आ जाती है तो जटायु में रावण से लड़ने का जज्बा भर देती है। क्षुद्र को महान बनाने की, नाचीज को नारायण बनाने की ताकत श्रद्धा में है।

शांतिकुंज की स्थापना के 50 वें वर्ष की यह गायत्री जयंती हमसे यही आवाहन करती है कि हमारी श्रद्धा में बल आए, शक्ति आए, ताकत आए। यह अक्सर अपने भीतर

की सच्ची श्रद्धा को जगाने का अवसर है। यदि हम इस अवसर की कीमत को पहचान लें तो इसी क्षण, इसी पल से हमारे जीवन में सौभाग्य की यात्रा शुरू हो जाती है। उस सौभाग्य को जीवन में उतारने के लिए श्रद्धा के इस महत्त्व को जानना एवं पहचानना बहुत जरूरी है।

कुछ शब्द बहुत कीमती होते हैं, पर बार-बार दोहराने के कारण उनके मूल्य व महत्त्व को भुला बैठते हैं। गुरु इतना कीमती शब्द था, पर बार-बार बोलने से हम उसके मूल्य व महत्त्व को भुला बैठे हैं और आज के समय में लोग गूगल को भी गुरु मानते हैं और इतना पवित्र शब्द अपनी मर्यादा को खोता नजर आता है। इस महत्त्वपूर्ण अवसर पर हमें अपनी दिव्य गुरुसत्ता के प्रति श्रद्धा को पुनर्जाग्रत कर सदा के लिए समर्पित होने की महती आवश्यकता है। ❑

कटक में हैजे का प्रकोप फैल रहा था। उड़िया बाजार मुहल्ले में उसका प्रभाव सर्वाधिक था; क्योंकि यहाँ के लोग सफाई की ओर ध्यान नहीं देते थे। उन लोगों की दयनीय दशा देखकर कुछ सेवाभावी बालकों को अत्यंत व्यथा हुई, परिणामतः वे दल बनाकर उस मुहल्ले की सफाई और रोगियों की सेवा में लग गए। इस दल के अगुआ सुभाष बाबू थे, जो तब ग्यारह-बारह वर्ष के थे। इस सेवा से लोगों के प्राणों की रक्षा होने लगी, परंतु वहाँ रहने वाले एक गुंडे हैदर खाँ को यह अच्छा नहीं लग रहा था। उसने देखा कि ये लड़के 'बाबूपाड़ा' मुहल्ले के हैं, जहाँ अधिकांश वकील रहते हैं।

इन वकीलों के कारण ही मुझे जेल जाना पड़ता है, ऐसा सोचकर वह उस मुहल्ले के लोगों के प्रति शत्रुता रखता था और अपने मुहल्ले के वासियों से उन लड़कों की सेवा न लेने को कहता था। उसके गुंडा होने के कारण लोग उसकी बात मानकर सेवा लेने से इनकार करते तो लड़के और अधिक विनम्रतापूर्वक सेवा करते।

संयोगवश तीन-चार दिन बाद ही हैदर खाँ के लड़के को हैजा हो गया। लड़कों का पूरा दल हैदर खाँ के यहाँ आकर सफाई व सेवा में जुट गया। हैदर इस दृश्य को देखकर स्तब्ध रह गया। उसके मन से शत्रुता के भाव नष्ट हो गए। उसने कहा—"बालको! मैं हैदर गुंडा हूँ, मैं तुम्हारा शत्रु हूँ।" सुभाष ने कहा—"यह रोगी हमारा भाई है। भाई का पिता हमारा शत्रु नहीं हो सकता।" हैदर ने रुँधे स्वर से बालकों से क्षमा माँगी, उसका हृदय परिवर्तन हो गया। अब वह भी बालकों के साथ सेवाकार्य में तत्पर हो गया।

आप की योजनाओं में गल जाएँगे

हम नहीं हैं प्रमादी सुनो पूज्यवर, प्यार निश्छल लुटाने मचल जाएँगे।
सब बनें देवता स्वर्ग उतरे धरा
आप के सपने हर दिल में पल जाएँगे।
कामना शेष कोई नहीं पूज्यवर, आप की योजनाओं में गल जाएँगे।
हम नहीं हैं प्रमादी सुनो पूज्यवर, प्यार निश्छल लुटाने मचल जाएँगे॥

बात चलने लगी जलजलों की बहुत,
प्रेम करुणा बहाने निकल आएँगे,
शुष्क मन के नहीं मनचले पूज्यवर, जैसा चाहोगे वैसा ही ढल जाएँगे।
हम नहीं हैं प्रमादी सुनो पूज्यवर, प्यार निश्छल लुटाने मचल जाएँगे॥

व्यक्त विश्वास हम पर किया आपने,
आप की शक्ति से युग बदल पाएँगे,
हर कसौटी पे होंगे खरे पूज्यवर, सब तरह मोर्चों पर सँभल जाएँगे।
हम नहीं हैं प्रमादी सुनो पूज्यवर, प्यार निश्छल लुटाने मचल जाएँगे॥

आपके जो भी संकल्प मुखरित हुए,
विघ्न सारे-के-सारे ही टल जाएँगे,
लक्ष्य जो भी दिया है हमें पूज्यवर, पूर्णता के सभी दीप जल जाएँगे।
हम नहीं हैं प्रमादी सुनो पूज्यवर, प्यार निश्छल लुटाने मचल जाएँगे॥

की है तुमने नए युग की जो कल्पना,
दुष्ट के दल समूचे दहल जाएँगे,
है युगों से तेरा साथ यह पूज्यवर, तू जहाँ ले चले हम तो चल जाएँगे।
हम नहीं हैं प्रमादी सुनो पूज्यवर, प्यार निश्छल लुटाने मचल जाएँगे॥

—शोभाराम शशांक

शांतिकुंज स्वर्ण जयंती व्याख्यान माला के अंतर्गत 'युग निर्माण योजना-दर्शन स्वरूप व कार्यक्रम' विषय पर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ प्रमुख मोहन भागवत जी द्वारा देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मृत्युंजय सभागार में उद्बोधन, श्रद्धेयद्वय से भेंट-परामर्श

भीषण आग की चपेट में आए बजरीवाला (कनखल-हरिद्वार) क्षेत्र में पीड़ितों को भोजन, राशन, कंबल एवं अन्य राहत सामग्री का शांतिकुंज आपदा प्रबंधनवाहिनी द्वारा वितरण

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र. ति. 01-05- 2021
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. Agra/WPP-08/2021-2023

अखिल भारतीय ग्राम विकास कार्यशाला,देव संस्कृति विश्वविद्यालय में संपन्न

लोकसभा अध्यक्ष माननीय श्री ओम बिरला जी का युगतीर्थ में आगमन, श्रद्धेय डॉ० साहब से भेंट-परामर्श

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक – डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष–0565-2403940, 2402574 , 2412272, 2412273 मोबा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org